निवेदन

इस छोटी सी पुस्तक का लेखक, अपने समय में, "सरस्वती" में कभी कभी विनोदात्मक आख्यायिकाओं और मनोरञ्जक श्लोकों का प्रकाशन करता था। उन्हीं में से अधिकांश का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इच्छा होने पर भी बिखरी हुई चीज़ें बिना कुछ परिश्रम के हस्तगत नहीं होतीं। यह संग्रह उसी परिश्रम को बचाने के लिए है।

यह दो भागों या खण्डों में विभक्त है। पहले में आख्यायिकाओं का संग्रह है, दूसरे में संस्कृत-श्लोकों या सूक्तियों का। इन खण्डों का भी विभाग, प्रकरण के अनुसार, कर दिया गया है और संस्कृत-पद्यों का हिन्दी में भावार्थ भी, जैसा प्रकाशित हुआ था, रख दिया गया है। कुछ को छोड़ कर अन्य आख्यायिकाओं का सम्बन्ध कवियों और महाजनों (बड़े आदमियों) से है। इसी तरह श्लोकों में से भी बहुत से श्लोक ऐसे रक्खे गये हैं जिनका विशेष सम्बन्ध कविता और कवियों से है। अतएव, आशा है, इस संग्रह के अवलोकन से सरसहृदय पाठकों को यदि और कुछ लाभ न होगा तो घड़ी आध-घड़ी उनका मनोरञ्जन तो अवश्य ही होगा। श्लोक सब प्राचीन हैं। आख्यायिकायें भी पुराने लेखकों के ग्रन्थों से उद्धृत की गई हैं।

दौलतपुर (रायबरेली)
५ फरवरी, १९२८ } महावीरप्रसाद द्विवेदी

विषय-सूची

आख्यान-खण्ड

(१)—कवि-कोविद-प्रकरण

		पृष्ठ
१—शङ्कराचार्य्य और मण्डन मिश्र का संवाद	...	१
२—ब्रह्मराक्षस की दो हुई समस्यायें	...	१०
३—कालिदास की शृङ्गारिक समस्या-पूर्त्ति		११
४—चमडे का कमण्डलु रखने का कारण .		१२
५—मानी कवि और तेली	...	१३
६—कवीश्वर का जाँता (चक्की)	.	१४
७—राजा शिवप्रसाद और कवि सेवकराम	...	१४
८—महाकवियों के दोष दिखाने का पुरस्कार		१५
९—मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम खानखाना का हमज़ुल्फ	..	१५
१०—मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम खानखाना, और सुमेरु पर्वत	.	१६
११—शायरों के शाहिन्शाह अबूतालिब और शाहेजहाँ		१८
१२—"सबै दिन नहीं बराबर जात"		१९
१३—एक कजूस और उसका ऐयाश लड़का		२२
१४—त्यनालीरामा को सहस्रमुखी कालिका का वर-प्रदान		२३
१५—फ्रेडरिक दि ग्रेट और वाल्टेर कवि की कविता	..	२५
१६—एक कवि और प्लेटो	.	२७
१७—शेक्सपियर का नाटकीय राजत्व ..	..	२७
१८—ड्राइडन की मेम की कविता-रचना का फल		२८
१९—मिल्टन की चण्डिका	.	२९

(२)—महाजन-प्रकरण

		पृष्ठ
१—मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना की उदारता	...	३०
२—बादशाह द्वारा मृत व्यक्तियों का धनापहरण	..	३१
३—औरङ्गज़ेब और मुल्लाजी	..	३४
४—शाह अब्बास का बाग़ और ज्योतिषीजी	..	३९
५—जानसन का कोश और अश्लील शब्द	...	४१
६—बड़ों की प्रत्युत्पन्नमति ...	...	४१
७—मिल्टन और राजा चार्ल्स का भाई जेम्स	..	४३
८—आते और जाते समय का आदर	..	४४
९—न्यूटन और जलती हुई अँगीठी	...	४५

(३)—प्रकीर्ण-प्रकरण

१—सिकन्दर और पुरन्दर की तोल	...	४६
२—राक्षसी का प्रश्न ..	...	४६
३—चिट्ठी का वज़न ...		४७
४—गोपाल के माता-पिता ...	.	४७
५—गोंद का ग़ज़ब दाना ...	...	४७
६—घड़ी और स्त्री ...	...	४८
७—"नराणां मातुलक्रमः" ...	...	४९
८—ली-हङ्ग-चङ्ग और बुल-डाग कुत्ता ...	..	४९
९—सबेरे उठने का फल .	..	५०
१०—संसार की असारता ...	..	५०
११—रुपये की आड़ में ईश्वर का लोप ...	..	५१
१२—लड़की के स्तन्य-पान से जीवन-रक्षा	...	५१
१३—दुःशील पुत्र	...	५२
१४—कोश से रुपये	...	५२
१५—ज्ञान होने पर भी विवाह ! ..	...	५३

	पृष्ठ
१६—गरमी और सर्दी में भेद	५३
१७—जादू का खञ्चर	५३

सुश्लोक-खण्ड

	श्लोक-संख्या		
(१)—राज-प्रकरण	१०	..	५६
(२)—कवि-काव्य-प्रकरण	३०	..	६४
(३)—कुकवि-प्रकरण	३	...	७६
(४)—सन्मित्र-प्रकरण	६	..	७८
(५)—नीति-प्रकरण	१७	.	८१
(६)—शृङ्गारोक्ति प्रकरण	१६	..	८७
(७)—प्रकीर्ण-प्रकरण	२६	.	९४

(१) कवि-कोविद-प्रकरण

१—शङ्कराचार्य और मण्डन मिश्र का संवाद

कुछ दिन हुए, पुराने काग़ज़ों में हमें अपनी १५ वर्ष की पुरानी एक नोटबुक मिली। "शङ्करविजय" नामक काव्य पढ़ते समय जो जो स्थल हमें विशेष महत्त्वपूर्ण जान पड़े थे उन पर इस नोटबुक में कुछ विचार थे। उन्हे देख कर हमें शङ्कराचार्य और मण्डन मिश्र के संवाद का स्मरण हो आया। इस संवाद से बहुत सी शिक्षायें ग्रहण की जा सकती हैं। अतएव संस्कृत-श्लोक-सहित हम इसे यहाँ पर प्रकाशित करते हैं। शङ्कराचार्य्य का चरित कई संस्कृत-ग्रन्थों में वर्णन किया गया है।

पर उन सबमें माधवाचार्य्य-संगृहीत शङ्करविजय का विशेष आदर है। शङ्कर और मण्डन का वार्तालाप उसी के आठवें सर्ग में है। मण्डन मिश्र पूर्व-मीमांसा के अनुयायी अर्थात् कर्म्मकाण्डी थे। उनका पाण्डित्य-सौरभ दिगन्तव्यापी था। शङ्कराचार्य्य ने उनको शास्त्रार्थ मे परास्त करके अद्वैत-वेदान्त-वादी बनाना चाहा। उस समय शङ्कर प्रयाग में थे। वहाँ से उन्होने नर्म्मदा-तट पर बसी हुई माहिष्मती नामक नगरी को प्रस्थान किया। वहीं मण्डन रहते थे।

माहिष्मती में शङ्कर शहर के बाहर एक बाग़ में उतरे और आह्निक कृत्यों से निवृत्त होकर मण्डन मिश्र का घर ढूँढ़ते हुए चले। मार्ग में उन्हें मण्डन की दो दासियाँ मिलीं। वे पानी भरने जा रही थीं। उनसे शङ्कर ने मण्डन मिश्र के घर का पता पूछा। दासियों ने कहा—

स्वतःप्रमाणं परतःप्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥ १ ॥
फलप्रदं कर्म्म फलप्रदोऽजः कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥ २ ॥
जगद्ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात्कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥ ३ ॥

अर्थात् जिस दरवाज़े पर पिंजड़े मे बन्द शुकों की स्त्रियो (शुकी या मैना आदि पक्षियो) को यह कहते सुनना कि वेद स्वतःप्रमाण है या परतःप्रमाण है? सुख दुःख इत्यादि फल कर्म्म देता है या सर्वशक्तिमान् अजन्मा ईश्वर देता है? संसार नित्य है या अनित्य? उसी को मण्डन पण्डित का मकान समझना।

इससे मण्डन परिडत के पाण्डित्य का अन्दाज़ा हो सकता है। जिसकी दासियाँ इतनी परिडता, जिसके शुक शास्त्रार्थ-वाक्यों के उच्चारण में इतने प्रवीण, वह अवश्य ही दिग्गज परिडत रहा होगा। मण्डन की दासियों से घर का पता सुन कर शङ्कर उसके द्वार पर पहुँचे। देखा तो दरवाजा बन्द है। इससे शिष्यों को तो वहीं छोड़ा। आप आकाश-मार्ग से उसके आँगन में आ उतरे। यहाँ पर बहुत सी शङ्कायें हो सकती हैं। शङ्कराचार्य्य ऐसे महात्मा माहिष्मती में पहुँचे। वे बाहर बाग़ में पड़े रहे। फिर ख़ुद ही मण्डन का मकान ढूँढ़ने चले। ऐसे विश्वविदित परिडत के दरवाज़े पर क्या कोई ऐसा न था जो उनके आने की ख़बर मण्डन को करता और तबतक उनका आदर-सत्कार भी करता? फिर आकाश-मार्ग से जाना कैसा? परन्तु इन शङ्काओं के उत्थान की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं। शङ्कराचार्य तो प्रयाग से माहिष्मती तक आकाश-मार्ग ही से गये थे। उन्होंने परकायप्रवेश भी किया था। इसके सिवा और भी कितने ही लोकोत्तर काम किये थे। फिर शङ्करविजय काव्य है, इतिहास नहीं। मण्डन के विषय में भी लिखा है कि व्यास और जैमिनि उनके यहाँ विद्यमान थे। अतएव शङ्का-समुद्भावना न करके शङ्कर और मण्डन की सिर्फ़ दुरुक्तियाँ सुनिए।

मण्डन के आँगन मे उतर कर आचार्य्य ने देखा कि मण्डन मिश्र श्राद्ध में निमन्त्रित होकर आये हुए वेदव्यास और जैमिनि के पाद-प्रक्षालन कर रहे हैं। शङ्कराचार्य्य जाकर व्यास और जैमिनि के पास बैठ गये। संन्यासी के रूप मे शङ्कर को इस तरह उन दो महात्माओं के पास बैठते देख मण्डन को क्रोध हो आया। इस पर मण्डन मिश्र और आचार्य्य मे

परस्पर जो उत्तर प्रत्युत्तर हुए वे सुनने लायक़ हैं। विशेषता उनमे यह है कि जो कुछ मण्डन ने कहा था पूछा उसका प्रायः और ही अर्थ करके आचार्य्य ने उत्तर दिये। सुनिए—

मण्डन—"कुतो मुण्डी।" मुण्डी (अर्थात् सिर मुँडाये हुए) तू कहाँ से आया? इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि शरीर के किस भाग से तू ने मुण्डन किया है?

शङ्कर—"आगलान्मुण्डी" गले तक मुण्डन किया है।

मण्डन—"पन्थास्ते पृच्छुते मया"। मैं तेरा रास्ता पूछता हूँ। यह कर्म्म वाच्य प्रयोग है। अतएव उसी वाच्य में यदि इसका अनुवाद किया जाय तो हो—"तेरा रास्ता मुझसे पूछा जाता है"। इसी पिछले अर्थ को लक्ष्य करके आचार्य्य कहते हैं—

शङ्कर—"किमाह पन्थाः"। रास्ते ने क्या कहा? इस तरह के उलटे उत्तर सुन कर मण्डन कुपित हो उठे और बोले—

मण्डन—"त्वन्माता मुण्डेत्याह"—उसने (रास्ते ने) कहा कि तेरी माँ मुण्डा है।

शङ्कर—"तथैव हि"। बहुत ठीक कहा। पूर्वोक्त संस्कृत उत्तर-प्रत्युत्तरों का एक श्लोक हो गया। यथा—

"कुतोमुण्ड्यागलान्मुण्डी पन्थास्ते पृच्छते मया।
किमाह पन्थास्त्वन्माता मुण्डेत्याह तथैव हि॥"

शङ्कराचार्य्य ने "तथैव हि" कह कर साथ ही यह श्लोक पढ़ा—

"पन्थानं त्वमपृच्छस्त्वां पन्थाः प्रत्याह मण्डन।
त्वन्मातेत्यत्र शब्दोऽयं न मां ब्रूयादपृच्छकम्॥"

मण्डन, तूने ही रास्ते से प्रश्न किया। तुझी को रास्ते ने जवाब में कहा कि "तेरी माता मुण्डा है"। मैंने तो रास्ते से

कुछ पूछा ही नहीं। इसलिए रास्ते का उत्तर मेरे लिए नहीं, तेरे ही लिए है। अर्थात् रास्ते ने तेरी ही माँ को मुण्डा वतलाया। यह सुन कर मण्डन और भी अधिक कुपित हुए। आप कहते हैं—

मण्डन—"अहो पीता किमु सुरा"? क्या तूने सुरा पी है? यहाँ पर "पीता" शब्द के अर्थ "पी गई" और "पीली" दोनों हो सकते हैं।

शङ्कर—"नैव श्वेता यतः स्मर" नहीं, सुरा पीत नही होती, श्वेत होती है। उसके रग को याद कीजिए।

मण्डन—"किं त्व जानासि तद्वर्ण"। क्या तू उसके वर्ण को जानता है?

शङ्कर—"अहं वर्णं भवान् रसम्"। मैं तो सिर्फ़ उसके वर्ण ही को जानता हूँ, पर आप तो उसके जायके से भी परिचित हैं। संन्यासियों को शराव छूना मना है। जव मण्डन ने शङ्कर पर उसके रंग जानने का दोष लगाया तव उन्होंने मण्डन को सुरापायी कह कर अपने ऊपर आये हुए आक्षेप का वारण किया। पूर्वोक्त संस्कृत-वाक्यों के मेल से यह श्लोक वना—

> "अहो पीता किमु सुरा नैव श्वेता यतः स्मर।
> कि त्वं जानासि तद्वर्णमहं वर्णं भवान् रसम्॥"

इस पर मण्डन का कोप और भी वढा। उन्होंने यह श्लोकार्ध कहा—

> "मत्तो जात. कलंजाशी विपरीतानि भापसे।"

अर्थात् कलञ्ज नामक मांस का खानेवाला तू मत्त (मतवाला) हो कर विपरीत वातें कह रहा है। "मत्तो जातः"

का अर्थ "मतवाला हो गया" भी होता है और "मुझसे पैदा हुआ" भी होता है। संन्यासियों को मांस खाना मना है। इस से ऐसे घृणित आरोप को सुन कर और पिछले अर्थ को लक्ष्य करके शङ्कर ने दूसरा श्लोकार्ध कहकर उस श्लोक को पूरा कर दिया। आपने कहा—

"सत्यं ब्रवीति पितृवत् त्वत्तो जातः कलंजभुक्॥"

जैसे तू पिता कलंजाशी हो कर विपरीत बातें बकता है वैसे ही तुझसे उत्पन्न हुआ कलंजाशी, जो विपरीत बातें कहता है तो, ठीक ही करता है। जैसा बाप, वैसा बेटा।

मण्डन—"कन्थां वहसि दुर्बुद्धे! गर्धभेनापि दुर्वहाम्।
शिखायज्ञोपवीताभ्यां कस्ते भारो भविष्यति?"

गधे से भी मुश्किल से वहन की जाने योग्य इतनी भारी गुदड़ी को तो तू लिये हुए फिरता है, पर शिखा और यज्ञोपवीत क्या इतने भारी हैं कि तुझसे न उठते? वाह रे दुर्बुद्धे!

शङ्कर—"कन्थां वहामि दुर्बुद्धे तव पित्रापि दुर्भराम्।
शिखायज्ञोपवीताभ्यां श्रुतेर्भारो भविष्यति॥"

रे दुर्बुद्धे, मैं जो कन्था वहन करता हूँ वह तेरे बाप से भी मुश्किल से उठाई उठती (मण्डन के पिता को शङ्कर ने गधा बनाया) और शिखा-यज्ञोपवीत से मुझको ही नहीं श्रुति (वेद) को भी बोझ मालूम होता है। क्योंकि श्रुति में लिखा है कि संन्यासी को इनकी ज़रूरत नहीं—

"अथ परिव्राड् विवरणवासा मुण्डोऽपरिगृहम्"।

मण्डन—"त्यक्त्वा पाणिगृहीतीं स्वामशक्तः परिरक्षणे।
शिष्यपुस्तकभारेच्छोर्व्याख्याता ब्रह्मनिष्ठता॥"

अपनी विवाहिता स्त्री की रक्षा नहीं कर सकता, इसलिए उसका त्याग करके शिष्य और पुस्तकों के इस बोझ की इच्छा रखनेवाले तेरी ब्रह्मनिष्ठा ख़ूब जाहिर हो रही है।

शङ्कर—गुरुशुश्रूषणालस्यात्समावर्त्य गुरोः कुलात्।
स्त्रिय शुश्रूषमाणस्य व्याख्याता कर्म्मनिष्ठता।"

गुरु की सेवा-शुश्रूषा में आलस्य के कारण गुरु के कुल से समावर्त्तन करके (घर आकर) स्त्रियों की सेवा करनेवाले तेरी कर्मनिष्ठा ख़ूब जगमगा रही है।

मण्डन—"स्थितोऽसि योपिता गर्भे ताभिरेव विवर्धित।
अहो कृतघ्नता मूर्ख कथ ता एव निन्दसि।"

रे मूर्ख! जिन स्त्रियों के गर्भ में तू रहा और जिन्होंने पालपोस कर तुझे इतना बड़ा किया उन्हीं की तू इस तरह निन्दा करता है। इस कृतघ्नता का भी कहीं ठिकाना है?

शङ्कर—"यासां स्तन्य त्वया पीत यासां जातोऽसि योनितः।
तासु मूर्खतम स्त्रीपु पशुवद्रमसे कथम्?"

रे मूर्खतम! जिनका तूने दूध पिया और जिनसे तू उत्पन्न हुआ उन्हीं में तू पशुओं के समान रममाण होता है। आश्चर्य और कृतघ्नता की हद होगई।

मण्डन—"वीरहत्यामवाप्तोऽसि वह्नीनुद्वास्य यत्नत"।

गार्हिपत्य, दाक्षिण और आहवनीय इन तीनों प्रकार की अग्नियों का नाश करके तू वीरहत्या (इन्द्र-हत्या) का पापी हुआ है। क्योंकि श्रुति में लिखा है—"वीरहा वा एष देवानां योऽग्नीनुद्वासयति"। और संन्यासी इन तीनों प्रकार की अग्नियों को दूर करके संन्यास-ग्रहण करना है।

शंकर—"आत्महत्यामवाप्तस्त्वमविदित्वा परं पदम्" ।

परन्तु परम पद को न जान कर तू तो आत्महत्या का पापी हुआ है, इसका भी तो विचार कर। "असन्नेव स भवति" इत्यादि श्रुति इस बात का प्रमाण है।

मण्डन—"दौवारिकान् वञ्चयित्वा कथं स्तेनवत् आगतः" ।

दरवाज़े पर द्वारपालों की वञ्चना करके—उनकी नज़र छिपाकर—चोर की तरह तू कैसे घर में घुस आया ?

शंकर—"भिक्षुभ्योऽन्नमदत्वा त्वं स्तेनवद्भोक्ष्यसे कथम् ।"

अतिथिरूप भिक्षुओं को अन्न (उनका भाग) न देकर चोर की तरह तू उसे कैसे खाता है ?

इस प्रकार शङ्कराचार्य्य की बातों के उत्तर देने में असमर्थ होकर मण्डन ने एक और ही चाल चली। वे बोले—

मण्डन—"कर्मकाले न सम्भाष्य अहं मूर्खेण सम्प्रति" ।

इस समय मैं कर्म्म (श्राद्ध) कर रहा हूँ। अतएव तुझ मूर्ख के साथ मैं बातचीत नहीं करना चाहता। इस श्लोकार्द्ध मे यतिभङ्ग दोष है। इस को लक्ष्य करके शङ्कर कहते हैं—

शंकर—"अहो प्रकटितं ज्ञानं यतिभङ्गे न भाषिणा" ॥

यतिभङ्ग अर्थात् पाठ-विच्छेद-युक्त भाषण करके तूने अपना ज्ञान खूब दिखलाया।

मण्डन—"यतिभङ्गे प्रवृत्तस्य यतिभङ्गो न दोषभाक्" ॥

जो यति (संन्यासी) का भङ्ग करने पर उतारू है उसका यति-(विच्छेद या विराम स्थान)-भङ्ग सदोष नहीं समझा जाता।

शंकर—"यतिभङ्गे प्रवृत्तस्य पञ्चम्यन्तं समस्यताम्" ॥

"यतिभङ्ग" इस समास को षष्ठी-तत्पुरुष नहीं, किन्तु पञ्चमी-तत्पुरुष समझ और "यति का भङ्ग" अर्थ न करके "यति से भङ्ग" अर्थ कर। अर्थात् तू यति को भङ्ग करने पर नहीं किन्तु यति से भङ्ग होने पर प्रवृत्त हुआ है।

मण्डन—"क्व ब्रह्म क्व च दुर्मेधा क्व संन्यासः क्व वा कलिः।
स्वाद्वन्नभक्ष्यकामेन वेषोऽय योगिनां धृतः" ॥

कहाँ ब्रह्म, कहाँ दुर्बुद्धि? कहाँ सन्यास कहाँ कलि? गृहस्थों को वञ्चित करके सुस्वादु भोजन करने ही के लिए तूने यह सन्यासियों का रूप धारण किया है।

शङ्कर—"क्व स्वर्गः क्व दुराचारः क्वाग्निहोत्रं क्व वा कलिः।
मन्ये मैथुनकामेन वेषोऽयं कर्म्मिणां धृतः" ॥

कहाँ स्वर्ग, कहाँ दुराचार? कहाँ अग्निहोत्र, कहाँ कलि? मेरी समझ में सिर्फ़ विषय-सेवन की इच्छा से तूने यह कर्म्म-काण्डियों का रूप धारण किया है।

इस प्रकार जब दुरुक्तियों की मात्रा बहुत ही बढ़ी तब वेद-व्यास और जैमिनि ने मण्डन को समझा बुझा कर शान्त किया। अन्त को मण्डन की स्त्री सरस्वती को मध्यस्थ बना कर शङ्कर ने मण्डन के साथ शास्त्रार्थ किया और उसे परास्त किया। तब मण्डन की स्त्री ने शङ्कर को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया। उसने जब स्त्री-पुरुष-विषयक शास्त्र में शङ्कर से प्रश्न किया तब उनसे उत्तर न बन पड़ा। इसलिए कुछ दिनों की मुहलत लेकर शङ्कर ने इस शास्त्र को भी, एक मृतक राजा के शव में प्रवेश करके, पढ़ा और वहाँ से लौट कर यथा-समय सरस्वती को भी उन्होंने शास्त्रार्थ में जीता।

२—ब्रह्मराक्षस की दी हुई समस्याओं की पूर्ति

सुनते हैं, राजा भोज ने एक नया महल बनवाया था। परन्तु उसमें जो कोई रात को सोता उसे एक ब्रह्मराक्षस तंग करता था। इस पीड़ा से बचने के लिए अनेक तांत्रिक बुलाये गये; परन्तु उनसे कुछ न हो सका। वह ब्रह्मराक्षस वहाँ से न टला। जो ब्राह्मण पूजा-पाठ के लिए उस मकान में रात को रहता उसे वह ब्रह्मराक्षस पाणिनि-मुनि के व्याकरण सूत्रों की, प्रति पहर मे, एक एक समस्या देता और उस का उत्तर ठीक न मिलने पर वह उसे बहुत सताता और किसी किसो को मार भी डालता। इस प्रकार जब बहुत उपद्रव होने लगा तब एक रात को कालिदास ने वहाँ रहना स्वीकार किया। वे वहाँ गये। उनको पहले ही का सा तांत्रिक ब्राह्मण समझ कर उस राक्षस ने पहले पहर, यह समस्या दी—

राक्षस—'सर्वस्य द्वे'

कालिदास ने कहा—'सुमतिकुमती सम्पदापत्तिहेतू'

दूसरे पहर आकर उसने दूसरी समस्या दी—

राक्षस—'वृद्धो यूना'

कालिदास बोले—'सह परिचयात् त्यज्यते कामिनीभिः।'

तीसरे पहर वह ब्रह्मराक्षस फिर आया और बोला—

राक्षस—'एको गोत्रे'

कालिदास ने पढ़ा—'स भवति पुमान् यः कुटुम्बं बिभर्ति।'

चौथे पहर उसने चौथी समस्या इस प्रकार दी—

राक्षस—'स्त्री पुंवच्च'

कालिदास ने कहा—'प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टम्।'

इस में "सर्वस्य द्वे" "वृद्धो यूना" "एको गोत्रे" और 'स्त्री-पुंवच्च' ये पाणिनि के चार सूत्र हैं। इन्हीं की समस्या दी गई है। अष्टाध्यायी में इनके और ही अर्थ हैं, परन्तु, कालिदास ने उनको मन्दाक्रान्ता वृत्त का आरम्भ मान कर उन का और ही अर्थ किया और अपने अर्थ के अनुकूल श्लोक की पूर्ति कर-दी। समस्याओं और पूर्तियों को मिला कर यह श्लोक हुआ—

सर्वस्य द्वे सुमतिकुमती सम्पदापत्तिहेतू।
वृद्धो यूना सहपरिचयात् त्यज्यते कामिनीभि.॥
एको गोत्रे स भवति पुमान् य. कुटुम्बं बिभर्ति।
स्त्री पुंवच्च प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टम्॥

अर्थात्—सब की सम्पत्ति और विपत्ति के दो कारण होते हैं—सुमति और कुमति। युवा से परिचय हो जाने पर स्त्रियाँ वृद्ध को छोड़ देती हैं। गोत्र में वही एक पुरुष समझा जाता है कुजो टुम्ब का पालन-पोषण करता है। स्त्री यदि पुरुष के समान आचरण करने लगती है तो घर सत्यानाश जाता है।

इस पूर्ति को सुन कर वह ब्रह्म-राक्षस कालिदास पर बहुत प्रसन्न हुआ और उस दिन से वह मकान उसने छोड़ दिया।

३—कालिदास की शृङ्गारिक समस्या-पूर्ति

सुनते हैं, कालिदास को जो समस्या दी जाती थी उस की पूर्ति करने में वे सदा शृङ्गार रस ही का अवलम्बन करते थे। उनकी बुद्धि की परीक्षा करने के लिए, एकबार सब पण्डितों ने उनको "अणोरणीयान्महतो महीयान्" यह वेदान्त-सम्बन्धिनी समस्या दी। यह ईश्वर के विषय में

है। इसका अर्थ है कि परमात्मा छोटे से भी छोटा और बड़े से भी बड़ा है। इसकी भी पूर्ति उन्होंने शृङ्गार रसात्मक ही की। यथा—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं
सखे गृहीत्वा शपथं करोमि।
योगे वियोगे दिवसोऽङ्गनाया
अणोरणीयान्महतो महीयान्॥

अर्थात् हे मित्र! मैं इस परम पवित्र यज्ञोपवीत को उठाकर शपथपूर्वक कहता हूँ कि संयोग में कामिनी का दिन "अणोरणीयान्" अर्थात् छोटे से भी छोटा और वियोग में "महतो महीयान्" अर्थात् बड़े से भी बड़ा हो जाता है।

४—चमड़े का कमण्डलु रखने का कारण

एक बार राजा भोज शिकार से लौट रहा था। मार्ग में उसे एक ब्राह्मण मिला। उसके हाथ में चमड़े का कमण्डलु था। कमण्डलु धातु का, लकड़ी का अथवा तुम्बे का होता है; चमड़े का नहीं। यही सोचकर भोज ने उस ब्राह्मण से चमड़े का कमण्डलु रखने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि "राजा भोज के राज्य में लोहे और ताँबे का अभाव हो गया है। इसीलिए, विवश होकर, मुझे चमड़े का कमण्डलु रखना पड़ा है" भोज ने अभाव का हेतु पूछा। तब वह बोला—

अस्य श्रीभोजराजस्य द्वयमेव सुदुर्लभम्।
शत्रूणां निगडैर्लोहं ताम्रं शासनपत्रकैः॥

अर्थात् राजा भोज के राज्यकाल में दो पदार्थ दुर्लभ हो रहे हैं। शत्रुओं के पैरों के लिए करोड़ों मन बेड़ियाँ बनने के कारण लोहा और असंख्य शासनपत्र लिखे जाने के कारण ताँबा। यह मनोहारिणी उक्ति सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उस ब्राह्मण को उसने बहुत कुछ पुरस्कार दिया।

५—मानी कवि और तेली

असनी ज़िला फतेहपुर में अनेक कवि होगये हैं। उनमें से मानी भी एक कवि थे। उनको मरे कोई पन्द्रह बीस ही वर्ष हुए होंगे। वे बहुत ही कम उम्र में अल्पायु होगये। उनकी विमाता (सौतेली माँ) उनको बहुत तंग किया करती थी। एक दिन उससे पीडित होकर मानी कवि, कन्धे पर लोटा-डोरी डाल विदेश जाने के लिए अपने घर से निकले। घर से निकलते ही उनको एक गली में गाँव का तेली मिला। यात्रा के समय तेली का मिलना अशुभ माना गया है। उसे देखकर मानी तो कुछ नही बोले; परन्तु उस तेली से न रहा गया। उसने अपनी ग्रामीण भाषा में कहा—

"मानी भाई! अब घरै लौटि चलौ"।

यह सुनकर मानी ने कहा—

"इक तेली कहा करिहै तिहि को
सौ तेली बसैं जेहि के घर माहीं।"

और जहाँ जाने के लिए निकले थे वहाँ धड़ाके से चले ही गये।

६—कवीश्वर का जाँता (चक्की)

एक राजा की सभा में इस पर बातचीत हो रही थी कि कौन बाजा सबसे अच्छा होता है। किसी ने कहा वीणा, किसी ने सितार, किसी ने मृदङ्ग, किसी ने जलतरङ्ग, किसी ने हारमोनियम, किसी ने कुछ, किसी ने कुछ। वहाँ पर एक देहाती कवि भी बैठे थे। उनसे जब पूछा गया कि "कवीश्वर! आपको कौन बाजा पसन्द है?" तब बहुत कहने सुनने पर आपने धीरे से कहा—"जाँता" आटा पीसने की चक्की!

७—राजा शिवप्रसाद और कवि सेवकराम

सुनते हैं, एक बार, असनी के कवि सेवकराम महाराजा बनारस की सभा में बैठे थे। उस समय वहाँ, राजा शिवप्रसाद, सितारे-हिन्द, भी थे। महाराजा बनारस को कविजी की बातें बहुत अच्छी लगती थीं। इसलिए राजा शिवप्रसाद की ओर उनका कम ध्यान था; कविजी की ओर अधिक। यह बात राजा शिवप्रसाद को बुरी लगी। इसे कविजी ने उनकी मुख की चेष्टा से ताड़ लिया। जब महाराजा बनारस उनसे बातचीत कर चुके तब कविजी ने उनसे एक प्रश्न करने के लिए आज्ञा माँगी। महाराजा बनारस ने उनको प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दी। तब सेवकरामजी ने, उसी समय बना कर, एक पद्य पढ़ा जिसके अन्त में था—

इस माहेताब हिन्द को सितारे हिन्द क्यों कहयो!

इसका सामान्य अर्थ जो है सो तो हई है, इसमें एक ध्वनि भी है। इसका विलक्षण प्रभाव राजा साहब पर हुआ। सुनते हैं, पीछे से वे कविजी के स्थान पर आये और उनसे उन्होंने क्षमा माँगी।

८—महाकवियों के दोष दिखाने का पुरस्कार

एक बार एक पण्डित ग्रीस के अपोलो नामक देवता के पास एक महाकाव्य के दोष निकाल कर ले गया और उन्हें उसको अर्पण किया। अपोलो बहुत प्रसन्न हुआ और उस पण्डित के परिश्रम के बदले में कुछ पुरस्कार देने की इच्छा से उसने उसके सामने धान का एक बोरा रख दिया और कहा कि भूसी को अलग और चावलों को अलग कर। जब वह पण्डित उसकी आज्ञा का पालन कर चुका तब अपोलो ने उसके परिश्रम के बदले में केवल भूसी देकर उसे विदा किया।

९—मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम खानखाना का हमजुल्फ़

एक बार एक ग़रीब ब्राह्मण ख़ानख़ाना के दरवाजे पर आया। दरवानों ने उसे भीतर जाने से रोका। उसने कहा कि नवाब से कह दो—तुम्हारा 'हमज़ुल्फ' तुमसे मिलने आया है और साथ अपनी बीबी को भी लाया है। इसकी ख़बर ख़ानख़ाना को दी गई। उन्होंने उस ब्राह्मण को भीतर बुला लिया, अपने पास बिठाया और पूछा कि कहो, तुमसे और मुझसे क्या रिश्ता है। ब्राह्मण ने कहा—सम्पदा और विपदा दो बहनें हैं। पहली आपके घर आई है, दूसरी मेरे घर। इसलिए

आप और मैं 'हमज़ुल्फ़' नहीं तो और क्या हैं? यह उक्ति सुन कर नवाब बहुत खुश हुए। आपने उसे ख़िलअत दी। एक उत्तम घोड़े पर बहुत ही अच्छा साज सजवा कर उस पर उसे सवार कराया और बहुत रुपया और चीज़-वस्तु दे कर उसे विदा किया।

संस्कृत सुभाषित के जाननेवालों से यह बात छिपी नहीं कि ब्राह्मण की यह उक्ति बहुत पुरानी है।

१०—मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना और सुमेरु पर्वत

राजा रुद्रदेव बड़ा दानी था। एक कवि देवता उसकी सभा में उपस्थित हुए और कहने लगे—

महाराज, कल मैंने मार्ग में सायङ्काल एक अजीब बात सुनी। आपसे निवेदन करना चाहता हूँ। सुनिए—

> कतिपयदिवसैः क्षयं प्रयायात् कनकगिरिः कृतवासरावसानः।
> इति मुदमुपयाति चक्रवाकी वितरणशालिनि वीररुद्रदेवे॥

हे नृप! आपकी दानशीलता को देखकर चक्रवाकी इस कारण ख़ुशी मना रही थी कि यदि वीर रुद्रदेव इसी तरह दान देना जारी रक्खेंगे तो सोने का यह सुमेरु गिरि कुछ दिनों में अवश्य ही चुक जायगा। फिर क्या है। फिर कभी रात न होगी। सदा दिन ही बना रहेगा और मेरा वियोग मेरे स्वामी चक्रवाक से कभी न होगा।

इस युक्ति से कवीश्वरजी का क्या आशय था, सो तो पाठक समझ ही गये होंगे। मालूम नहीं, राजा रुद्रदेव ने कहाँ तक उनकी इच्छा पूर्ण की। परन्तु इस श्लोक की बदौलत एक

और कवि का भला अवश्य हो गया। पूर्वोक्त श्लोक कुवलयानन्द का है। अब इसके विषय में प्रोफ़ेसर आज़ाद अपनी किताब दरबारे-अक़बरी में क्या फ़रमाते हैं, सो भी उन्हीं के शब्दों में सुन लीजिए:—

"अहले हिन्द का खयाल है कि सूरज हर शाम को सुमेरु के पीछे चला जाता है और वह सोने का एक पहाड़ है। उन्होंने यह भी फ़र्ज़ किया है कि चकवा-चकई दिन को साथ रहते हैं, रात को दरिया के वार-पार अलग अलग जा बैठते और रात भर जाग कर काटते हैं। एक भाट ने चकवा-चकई की ज़बानी नवाब अब्दुररहीम खानखाना से कवित्त कहा, जिसका ख़ुलासा यह है कि, ख़ुदा करे ख़ानखाना का समन्द फ़तहात सुमेरु पहाड़ तक जा पहुँचे। वह बड़ा सखी है। सब बख्श देगा। फिर हमेशा दिन रहेगा। और हम तुम मौज करेंगे। जब यह कवित्त पढ़ा गया तमाम अहले दरबार ने तारीफ़ की कि नया मज़मून है। खानखाना ने पूछा कि पण्डितजी तुम्हारी उम्र क्या है। अर्ज़ की कि ३५ वर्ष। कुल १०० वर्ष की उम्र लगाई गई और ५ रुपये रोज़ के हिसाब से ६५ वर्ष का जो कुछ रुपया हुआ खज़ाने से दिलवा दिया।"

आज़ाद यदि पण्डितजी का कहा हुआ कवित्त भी लिख देते तो बहुत ही अच्छा होता। मज़मून पण्डितजी के लिए तो नया न था, हाँ ख़ानख़ाना के लिए नया ज़रूर था और उसने क़द्रदानी भी ख़ूब की।

११—शायरों के शाहंशाह अबूतालिब और शाहेजहाँ

उस दिन हम एक किताब पढ़ रहे थे कि शाहेजहाँ बादशाह और उसके मलकुश्शोरा अबूतालिब से सम्बन्ध रखनेवाली एक घटना का वृत्तान्त वहाँ मिला। शाहेजहाँ ने अबूतालिब पर बहुत प्रसन्न होकर उसे मुहरदारी का काम देना चाहा। यह काम सबसे अधिक विश्वसनीय मनुष्य ही को मिलता है, क्योंकि शाही मुहर उसके पास रहती है। वही सब फ़रमानों पर मुहर करता है। यह पद लार्ड चेम्बरलेन (Lord Chamberlain) के पद से मिलता जुलता है। पर अबूतालिब को यह बात पसन्द न आई। बादशाह ने ज्योंही अपनी इच्छा प्रकट की त्योंही उसने यह शेर पढ़ाः—

चुमेहरे तु दारम चे हाजत ब-मुहरम्।
मरा मेह्रदारी बेह ज़ मुह्रदारी॥

अर्थात्—यदि आपकी मेहर (कृपा) मुझ पर है तो मुहर की मुझे क्या ज़रूरत ? मुहरदारी की अपेक्षा मेहरदारी ही (कृपापात्रताही) मेरे लिए अधिक अच्छी है।

इसे पढ़ कर हमें एक और, कुछ कुछ ऐसी ही, घटना याद आगई। एक हिन्दी-लेखक पर कालेकाँकर के परलोकवासी राजा रमेशसिंह की बड़ी कृपा थी। जिस समय वे राजा रामपालसिंह के मुक़ाबले में रामपुर की रियासत की हक़दारी के लिए लड़ रहे थे उस समय उन्होंने पूर्वोक्त लेखक को लिखा कि यदि मैं इस मुक़दमे में जीत गया तो राजा होने पर मैं तुम्हें अपने राज्य में अमुक पद प्रदान करूँगा। राजा होने पर उन्होंने अपने वचन को पूर्ण करना चाहा। परन्तु उनके उस कृपापात्र लेखक ने उन्हें बहुत बहुत धन्यवाद दिया और कहा कि मुझे

कोई पद न चाहिए। चाहिए सिर्फ़ मुझे आपकी कृपा। वह जितनी इस समय मुझ पर है उससे अधिक न हो, तो उतनी ही बनी रहे। मुझे और कुछ न चाहिए।

१२—"सबै दिन नहीं बराबर जात"

सैयद इन्शा, लखनऊ में, उर्दू के बहुत बड़े शायर हो गये हैं। नव्वाब सआदतअलीख़ां के वे कृपापात्र थे। अमीराना ठाठ से रहते थे। दरवाज़े पर हाथी-घोड़े, पालकी-नालकी इत्यादि का जमघटा रहा करता था। कविता में वे किसी को अपने सामने कोई चीज़ ही न समझते थे। पर अन्त को जैसी विपत्त उन पर पड़ी वैसी शायद ही किसी पर पड़ी होगी।

एक रोज़ नव्वाब सआदतअलीख़ां की किसी बात के जवाब में इन्शा के मुँह से एक अनुचित शब्द निकल गया। इस पर नव्वाब साहब मन ही मन सैयद इन्शा पर नाराज़ हो गये। इन्शा नव्वाब को उत्तमोत्तम कविता और लतीफ़े सुनाया करते थे। एक दिन आप ने बहुत ही अच्छा लतीफ़ा सुनाया। सुन कर नव्वाब साहब ने इन्शा की बड़ी तारीफ की। इस पर इन्शा मूँछों पर ताव दे कर बोले कि हुज़ूर के इक़बाल से कयामत तक ऐसी ही बातें सुनाता जाऊँगा जो न देखी गई हों, न सुनी गई हों। सआदतअली नाराज़ थे ही। कहा, बहुत नहीं, रोज़ दो लतीफ़े सुना दिया करो। पर ऐसे हों जो न देखे गये हों न सुने गये हों। यदि इसमें फ़र्क पड़ा तो ख़ैर न होगी। अब इन्शा पर आफ़त नम्बर १ आई। वे बहुत हैरान हुए। रोज़ दो लतीफ़े, नये, कहां से लावें? ख़ैर कुछ दिन तक किसी

तरह गुजरा; लोगों से नई नई बातें पूंछ पांछ कर, उनमें नमक मिर्च मिला कर, काम चलाया। एक दिन आप किसी के यहां मिलने गये। इधर नव्वाव ने बुला भेजा। आप मकान पर न मिले। नव्वाव ने हुक्म दिया, आज से किसी और के यहां न जाया करो। यह आफ़त नम्बर २ हुई। ईश्वर भी उन से रूठ सा गया। उनका जवान लड़का मर गया। आफ़त नम्बर ३ हुई। इस सदमे से उनके दिमाग़ में फ़र्क़ आ गया। एक दिन सआदतअलीख़ां की सवारी उनके मकान के पास से निकली। उन्होंने नव्वाव को सरे राह सख़्त सुस्त कहा। नव्वाव ने उनकी तनख़्वाह बन्द कर दी। यह आफ़त नम्बर ४ हुई। कुछ दिनों वाद उनकी दशा बहुत ही बिगड़ गई। विक्षिप्तता भी बढ़ गई और तंगदस्ती भी। उनके एक दोस्त का कथन है कि जहां हाथी झूमते थे वहां ख़ाक उड़ने लगी, और कुत्ते लोटने लगे। उनकी बीवी के पास ओढ़ने को चादर तक न रही। पागलपन की हालत में मकान के भीतर राख के एक ढेर के पास नंगे बदन पड़े रहने की नौवत आई। जो इन्शा अपनी कविता की बलन्दी से आसमान को कँपाते थे और ख़ुद ही अपनी कविता के विषय में गर्वोक्तियाँ कहते थे, मरने के समय, उनकी बड़ी ही दुर्दशा हुई।

बिगड़े दिनों में एक वार मैले कुचैले, फटे पुराने, कपड़े पहने, गले में एक तोवड़ा लटकाये, हाथ में एक छोटा सा हुक्का लिये सैयद इन्शा एक मुशायरे में पहुँचे। मुशायरे में शायद उनका यह जाना आख़िरी था। वहां उन्होंने सब शायरों के एकत्र होने के पहले ही, थैले से निकाल कर एक ग़ज़ल पढ़ी। उसके कई मिसरे बहुत ही हृदय-द्रावक है। देखिए—

कमर बाँधे हुए चलने को याँ सब यार बैठे हैं।
बहुत आगे गये बाकी जो हैं तैयार बैठे हैं॥
न छेड़ ए निगह ते बादे बहारी राह लग अपने।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेज़ार बैठे हैं॥
नजीबों का अजब कुछ हाल है इस दौर में यारो।
जहाँ पूछो यही कहते हैं हम बेकार बैठे है॥
भला गर्दिश फलक की चैन देती है किसे इन्शा।
ग़नीमत है कि हमसूरत यहाँ दो चार बैठे हैं॥

इस ग़ज़ल को पढ़कर इन्शा तो चले गये, पर सुनने वालों का जी भर आया और बड़ी देर तक मुशायरे में सन्नाटा छाया रहा।

इँगलैएड में भी कई एक कवि और ग्रन्थकार ऐसे हो गये हैं जिनको इन्शा ही की तरह आफ़तें झेलनी पड़ी हैं।

एक दिन सुबह हम एक सुनसान सड़क पर घूम रहे थे। पास ही एक गाँव था। उसमें एक आदमी "सबै दिन नहीं बराबर जात" यह पद बड़े ही लय से गा रहा था"। उसने चित्त पर बड़ा असर किया। उसे सुन कर कालिदास की—

"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण"

और माघ की—

"हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः"

उक्तियाँ स्मरण हो आईं। सैयद इन्शा के अन्तिम जीवन की दुःखपूर्ण घटना भी याद आ गई। इसी से यह नोट लिखना पड़ा।

१२—एक कंजूस और उसका ऐयाश लड़का

एक आदमी बड़ा कंजूस था। उसने एक एक कौड़ी जमा कर के वहुत सा धन इकट्ठा किया था। उसका लड़का ऐयाश निकला। उसने पिता के धन को वरवाद करना शुरू किया। यह दशा देख कर वाप ने वेटे को एक कविता लिख कर दी। उसमें उसने दरिद्रता का वर्णन करके यह दिखलाया कि फ़ुज़ूलख़र्ची से ग़रीव हो जाने पर आदमी की कैसी दुर्दशा होती है। वह कविता यह है—

जानेपिदर तु सफ़रै बेनाँ न दीदई।
रंजे अयाल गिरियै तिफ़लाँ न दीदई॥
न नशिस्तई बगोशै अज़ बीम क़र्ज़ख़्वाह।
नागह ज़े दर दरामद मेहमाँ न दीदई॥

अर्थात् हे पिता के प्राणोपम पुत्र, तूने वेरोटी का दस्तरख़ान नहीं देखा; तूने बीवी और आश्रित जनों का रंज और लड़कों का रोना नहीं देखा; कर्ज़ख़्वाहों के डर से तू कभी किसी कोने में छिप कर नहीं वैठा; और अकस्मात् दरवाज़े से भीतर आये हुए मेहमान को भी तूने कभी नही देखा। दरिद्रता का यह वहुत ही अच्छा वर्णन है। घर में खाने को नहीं है; जोरू रंजीदा वैठी है; लड़के वावैला मचा रहे हैं; जिनका रुपया देना है वे दरवाज़े पर खड़े हैं; और ऐसी आफ़त में भी मेहमान चले आ रहे हैं! आदमी पर इससे अधिक और क्या आपत्ति आ सकती है? पर इस कविता का कुछ भी असर उस आदमी के वेटे पर न हुआ। इसके उत्तर में उस नाख़लफ़ ने क्या लिखा सो भी सुनिए—

बावा मगर तु ज़ुल्फ़े परीशाँ न दीदई।
खाले सियह बरूय दुरखशाँ न दीदई॥
न नशिस्तई बगोशै दर इन्तजारे यार।
नागह ज़े दर दरामद जानाँ न दीदई॥

लेकिन, बाबा, तूने परीशान ज़ुल्फ़ों को नहीं देखा, लावण्य-लोल मुखमण्डल पर तूने काले तिल को भी नहीं देखा, यार के इन्तजार में तू कभी किसी कोने में बैठा भी नहीं, और न अकस्मात् दरवाज़े से भीतर आते समय तूने कभी जानाँ ही को देखा। मतलब यह कि अगर तू कभी मेरी हालत में रहा होता तो रुपये पैसे की तूने कभी ज़रा भी परवा न की होती।

१४—त्यनालीरामा को सहस्रमुखी कालिका का वर-प्रदान

सोलहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में दक्षिण के विजय-नगर नामक संस्थान में कृष्णदेव नाम का प्रसिद्ध राजा हो गया है। उसकी सभा में त्यनालीरामा नामधारी एक समय-सूचक और प्रत्युत्पन्नमति विकट-कवि (मसख़रा) था। दक्षिण में उसका नाम वैसा ही प्रसिद्ध है जैसा इस ओर बीरबल का प्रसिद्ध है। त्यनालीरामा ने कृष्णा ज़िले के त्यनाली नामक ग्राम में एक ब्राह्मण के घर में जन्म लिया था। विकट-कवि होने के कारण जब उसकी प्रसिद्धि हुई तब लोग उसके ग्राम के नाम के साथ उसका भी नाम पुकारने लगे। इसलिए उसका नाम रामा से त्यनालीरामा हो गया। जब वह लड़का था, तभी उसमें मनोहर भाषण करने की

शक्ति थी। उसकी कुशाग्र बुद्धि और सुन्दरता पर प्रसन्न होकर एक बार एक साधु ने लड़कपन ही में उसे एक साधना बतलाई और उपदेश दिया कि यदि तू उसके अनुसार काली की उपासना करेगा तो सहस्रमुखी कालिका तुझे दर्शन देगी; और यदि तू उसे देखकर न डरेगा तो तुझे वह मुँहमाँगा वर देगी। त्यनालीरामा जब वयस्क हुआ तब उसने काली की उसी प्रकार उपासना की। यथासमय सहस्रमुखी, परन्तु दो भुजावाली, कालिका उसके सम्मुख प्रकट हुई। उस भयंकर रूप को देखकर त्यनालीरामा डरा तो नहीं; किन्तु उलटा हँसा। उसे हँसते देख देवी ने पूछा—"तू हँसा क्यों?" त्यनालीरामा ने बड़ी नम्रता से विनयपूर्वक कहा—"भगवती! मैं इसलिए हँसा कि हम मनुष्यों के एक नासिका और दो हाथ हैं; परन्तु जब श्लेष्मा (जुकाम) होता है तब दोनों हाथों से नाक साफ़ करते करते तङ्ग आ जाते हैं। आपके सहस्र नासिकायें हैं; परन्तु हाथ केवल दो ही हैं। यदि अभाग्यवश आपको कहीं श्लेष्मा होजाय तो आप ही कहिए, आपके ये दो हाथ कहाँ तक आपकी सहायता करेंगे"! त्यनालीरामा का यह परिहास सुनकर कालिका बहुत प्रसन्न हुई और उसने यह वर दिया कि मेरे साथ विनोद करने के कारण आज से तू विकट-कवि हुआ। त्यनालीरामा ने भगवती को, उसकी इस कृपा के लिए बहुत धन्यवाद दिया और कहा—माता आपने दास को बड़ा अच्छा वर दिया। आपकी दी हुई "विकट-कवि"* की पदवी को यदि

---

*विकट-कवि के लिए तामिल भाषा में जो शब्द है वह उलटा सीधा चाहे जैसा पढ़ा जाय वही रहता है। वह एक ऐसा ही शब्द है जैसा अँगरेजी में Level शब्द है।

मैं बाईं ओर से पढ़ता हूँ तो भी मैं "विकट-कवि" होता हूँ और यदि दाहिनी ओर से पढ़ता हूँ तो भी "विकट-कवि" होता हूँ ! त्यनालीरामा की इस चतुरता और प्रत्युत्पन्नमति पर भगवती और भी अधिक प्रसन्न हुई और उसे उसने इस प्रकार दूसरा वर दिया—त्यनालीरामा ! तू साधारण विकट कवि नहीं, किन्तु राज्यमान्य विकट-कवि होगा, और तेरी कीर्ति दूर दूर तक फैलेगी । तबसे त्यनालीरामा के विकट-कवित्व की प्रशंसा सब ओर होने लगी और थोड़े ही दिनों में वह विजयनगर के राजा के यहाँ विकट-कवि नियत हुआ ।

१४—फ़्रेडरिक दि ग्रेट और वालटेर की कविता

प्रुशिया के प्रसिद्ध राजा फ्रेडरिक दि ग्रेट के समय में वालटेर नामक एक प्रसिद्ध कवि और इतिहासकार था । वालटेर ने एक नवीन कविता लिख कर, एक दिन, राजा को सुनाई । राजा ने कहा कि आज शाम को यह कविता लेकर हमारे दरबार में आना; तब हम स्वस्थता से इसे फिर सुनेंगे । यथासमय वालटेर उसे लेकर राजा के पास पहुँचा । वहाँ पहले ही से अनेक विद्वान् एकत्र थे । फ्रेडरिक ने वालटेर की कविता को बड़े प्रेम से सुना और उसकी बड़ी प्रशंसा की । परन्तु पीछे से उसने कहा कि यह कविता पुरानी जान पड़ती है । वालटेर ने शपथ-पूर्वक कहा कि यह मेरी ही बनाई हुई है, इसके अन्तिम पद्य आज ही मैंने रचे हैं, आठ दिन पहले इस

का नामो-निशान तक न था। इस पर फ्रेडरिक ने कहा कि मेरे यहाँ इङ्गलैण्ड से एक कवि आया है। वह इस कविता को जानता है। वालटेर बोला, ऐसा होना असम्भव है, मेरी यह कविता मेरे सिवा और किसी ने देखी ही नही। तब फ्रेडरिक दि ग्रेट ने उस कवि को बुला भेजा। जब वह आया तब उससे राजा ने पूछा कि क्या तुम अमुक अमुक विषय की अमुक अमुक कविता के सम्बन्ध में कुछ जानते हो? उसने कहा कि उसके सम्बन्ध में जानने की आप क्या पूछते हैं, मुझे वह कविता साद्यन्त कण्ठ है। यह सुन कर वालटेर ने कुपित हो कर उससे अपनी कविता का पहला पद्य पढ़ने के लिए कहा। उसने पहला ही नहीं, किन्तु सारी कविता पढ़ कर सुना दी। इस प्रकार का तमाशा देख कर वालटेर आश्चर्य से चकित हो गया। उसने कहा कि यह मनुष्य का नही किन्तु किसी पिशाच का काम है। वालटेर को इस प्रकार कुपित, लज्जित और घबराया हुआ देखकर फ्रेडरिक ने उसके आश्चर्य का निवारण इस प्रकार किया। उसने कहा, यह कविता अवश्य नई है और अवश्य तुम्हारी ही बनाई हुई है। इस समय मैंने इस कवि की विलक्षण स्मरण शक्ति की केवल परीक्षा ली है। कुछ भी एक बार सुनने से इसे कण्ठस्थ हो जाता है। इसको परदे की आड़ में बिठला कर मैंने तुमसे यह कविता पढ़वाई है। सुनते ही वह इसे कण्ठस्थ हो गई। यह सुन कर वालटेर के जी में जी आया। फ्रेडरिक ने अच्छा पारितोषिक देकर वालटेर को प्रसन्न किया।

१६—एक कवि और प्लेटो

ग्रीस देश की राजधानी एथन्स में अनेक महाकवि हो गये हैं। एक बार एक कवि ने एक नये काव्य की रचना कर के एक सभा में उसे पढ़ कर सुनाया। सुनने के पहले वहाँ पर अनेक श्रोता इकट्ठे थे, परन्तु उस काव्य का "श्रीगणेशाय नमः" कवि के मुख से निकलते ही एक उठा; दूसरा उठा, तीसरा उठा। इसी प्रकार सब लोग वहाँ से ऊब कर धीरे धीरे चले गये। अन्त में ग्रीस का विख्यात विद्वान् प्लेटो केवल रह गया। उसे देखकर कवि ने किञ्चित् मात्र भी क्रोध, खेद, अथवा निरुत्साह न प्रकट कर के कहा—"कोई चिन्ता नहीं, अकेला प्लेटो मेरे लिए हज़ार श्रोताओं से अधिक है"।

१७—शेक्सपियर का नाटकीय राजत्व

एक बार इँगलैंड का प्रसिद्ध कवि शेक्सपियर अपने ही बनाये हुए एक नाटक का अभिनय कर रहा था। उसमें उसने राजा की भूमिका ली थी। ये बनावटी राजा साहब जब रङ्ग-भूमि के दरबार में उपस्थित हुए तब उनके मन्त्री इत्यादि अधिकारियों ने उठ कर उनका यथा-रीति अभिवादन किया। इँगलैंड की रानी एलिज़बेथ भी यह खेल देखने गई थी। जहाँ इन बनावटी राजा साहब का सिंहासन था वहीं उसी के पास वह बैठी थी। रानी बड़ी चतुर थी और शेक्सपियर पर उसकी बहुत प्रीति थी। उसने शेक्सपियर की परीक्षा लेना चाहा। अतः जिस समय शेक्सपियर रूपी राजा साहब अपने कर्म्म-चारियों को भिन्न भिन्न प्रकार के हुक्म दे रहे थे उसी समय

रानी ने अपना रूमाल, जान बूझ कर, नीचे गिरादिया। यह उसने इसलिए किया कि देखें शेक्सपियर अपना राजत्व भूल जाता है या नहीं, और मेरे रूमाल को उठा कर मुझे देता है या नहीं। क्योंकि सामाजिक नियमानुसार सामान्य आदमी को किसी सभ्य स्त्री का गिरा हुआ रूमाल उठा कर देना ही चाहिए। परन्तु शेक्सपियर सरस्वती-सिद्ध पुरुष था। वह भला, ऐसे समय में, भूल कर सकता था ? रूमाल गिरते देख उसने तुरन्त ही कहा—

"But ere this be done, take up our sister's handkerchief"

अर्थात् यह काम करने के पहले हमारी बहन का रूमाल उठा दो। इस समय-सूचक उत्तर से उसने अपने राजत्व की भी रक्षा की और रानी यलिजबेथ को राजा की बहन बना कर उसके राज्य-पद की भी रक्षा की। रानी यह उत्तर सुन कर बहुत प्रसन्न हुई।

१८—ड्राइडन की मेम की कविता-रचना का फल

इँगलैंड में ड्राइडन नामक एक प्रसिद्ध कवि हो गया है। अपने पति की कविता की प्रशंसा सुन कर ड्राइडन की मेम साहबा को भी कविता करने का शौक़ हुआ। इसलिए वे भी अपने मकान के एक कमरे में, किवाड़ बन्द कर के, कविता करने के लिए बैठने लगीं। इसका यह फल हुआ कि घर के नौकर-चाकर अपने अपने काम में शिथिलता करने लगे। यह शिथिलता यहाँ तक बढ़ी कि मकान साफ़ भी अच्छी तरह न किया जाने लगा। एक बार दो तीन बड़े आदमी ड्राइडन से मिलने आये। जिस

कमरे में ड्राइडन उनसे मिला वह बहुत ही मैला था; उसमें कहीं कहीं मकड़ियों ने जाला तक लगाना आरम्भ कर दिया था। इस मैलेपन को देख कर ड्राइडन मनही मन बहुत लज्जित हुआ। उससे जो लोग मिलने आये थे वे जब चले गये, तब कुपित होकर ड्राइडन अपनी मेम के कमरे की ओर गया। वहाँ, द्वार पर जाकर, उसने जोर से किवाड़ खटखटाये। जब मेम साहबा भीतर से निकल कर बाहर आईं तब उसने बहुत क्रुद्ध हो कर उनसे कहा—

"मैं चाहता हूँ कि आज से तुम कविता लिखना बन्द कर दो। खबरदार जो तुमने फिर कभी एक भी पंक्ति लिखी"।

मेम साहेबा—"प्रियतम! क्यों? क्या हुआ?" उसने बड़े प्रेम से और बहुत मीठे सुर में पूछा—

ड्राइडन—"क्यों? क्यों क्या? मैं देखता हूँ कि जब तुम और मैं दोनों एक ही साथ कविता करने लगते है तब तत्काल ही मकड़ियाँ जाले बिनना आरम्भ कर देती हैं"।

१६—मिल्टन की चण्डिका

अँगरेजी के विख्यात कवि मिल्टन ने अन्धे होने पर एक महा कलहकारिणी चण्डिका रमणी के साथ विवाह किया था। एक दिन उसके एक मित्र ने कहा—"आपकी नूतन विवाहिता स्त्री गुलाब के फूल के समान है।" मिल्टन ने धीरे से उत्तर दिया "आपका कहना ठीक जान पडता है; अन्धे होने के कारण गुलाब तो मुझे देख पड़ता नहीं, परन्तु, उसका काँटा प्रतिदिन अवश्य चुभता है।"

(२) महाजन-प्रकरण

१—मिर्ज़ा-अब्दुररहीम ख़ानख़ाना की उदारता

शम्सुलउलमा मौलाना मौलवी मुहम्मद हुसैन साहब 'आज़ाद' ने हिन्दी के प्रसिद्ध कवि ख़ानख़ाना (रहिमन) की उदारता और दानशीलता की कितनी ही बातें अपनी एक किताब में लिखी हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है।

(१)

एक दिन ख़ानख़ाना कुछ चिट्ठियों पर दस्तख़त कर रहे थे। उनमें से एक चिट्ठी किसी पियादे के नाम थी। उसमें एक हज़ार दिरम की जगह एक हज़ार रुपये आपने भूल से लिख दिये। दीवान ने प्रार्थनापूर्वक कहा कि आप भूल से दिरम के बदले रुपये लिख गये हैं। ख़ानख़ाना ने उत्तर दिया कि मेरे क़लम से जो निकल गया निकल गया। इस पियादे के भाग्य में रुपये ही बदे थे, दिरम नहीं।

(२)

एक दिन नज़ीरी नेशापुरी ने कहा—नवाब, मैंने लाख रुपये का ढेर कभी नही देखा कि कितना होता है। ख़ानख़ाना ने अपने ख़ज़ानची को आज्ञा दी। उसने लाख रुपये का अम्बार लगा दिया। नज़ीरी ने कहा—परमेश्वर को धन्यवाद है कि आपकी कृपा से आज मैंने लाख रुपये देख लिये। ख़ानख़ाना ने उत्तर दिया कि इस इतनी छोटी बात के लिए परमेश्वर को क्या धन्यवाद? ये सारे रुपये आपने नज़ीरी को दे डाले और

कहा कि अब परमेश्वर को धन्यवाद दो और अपनी कृतज्ञता प्रकट करो तो बात भी है।

२—बादशाह द्वारा मृत व्यक्तियों का धनापहरण

शाहेजहाँ बादशाह के समय तक यह नियम था कि जो मनुष्य बादशाह के यहाँ किसी प्रतिष्ठित पद पर रह कर, बहुत सा धन इकट्ठा कर लेता था, वह सब, उसके मरने पर, उसके वारिसों को न मिलता था। बादशाह ही उसका वारिस समझा जाता था। यह ऐसा अनुचित और अन्याय-पूर्ण नियम था कि इसके कारण बड़े बड़े अमीरों की स्त्रियों को, पति के मरने पर, शाही पेनशन रूपी भिक्षा माँगनी पड़ती थी, और उनके लड़कों को, कभी कभी, बहुत छोटे छोटे काम करने पड़ते थे।

शाहेजहाँ के समय में नेकनामख़ाँ नामक एक अमीर देहली में था। उसने कोई चालीस वर्ष तक बादशाही नौकरी की थी और बड़े बड़े पदों पर रह कर अनन्त धन-सञ्चय कर लिया था। परन्तु जब उसे पूर्वोक्त नियम का स्मरण होता था तब उसे अपार दुःख और खेद होता था। बुड्ढे होने पर यह बात उसे और भी अधिक असह्य होने लगी। अतएव मरने के पहले ही उसने अपनी सम्पत्ति चुपचाप निर्धन, कङ्गाल और दान-पात्र लोगों को बाँट दी। बाँट कर उसने बड़े बड़े घड़ों और हण्डों में कङ्कड़, पत्थर, कोयला, चीथड़े और पुरानी जूतियाँ भर कर उन पर मुहर लगा दी और यह प्रकाशित कर दिया कि उनके भीतर भरा हुआ धन, उसके मरने पर, बादशाह के यहाँ भेज दिया जाय। शाहेजहाँ को नेकनामख़ाँ की

धनाढ्यता का समाचार पहले ही से मिल चुका था। इसलिए जिस दिन वह मरा उसके दूसरे ही दिन बादशाह ने उसके घर अपना एक विश्वासपात्र सरदार भेजा। उसने उसके ख़ज़ाने से मुहर लगे हुए वे सब घड़े और हण्डे निकाले और निकाल कर बादशाह के पास उन्हें वह ले आया। शाहेजहाँ उस समय दीवानेख़ास में बैठा था। वहीं वे सब रक्खे गये। उस सम्पत्ति को देखने की उसे इतनी उत्सुकता थी कि उसने उन घड़ों को तत्काल ही खोलने की आज्ञा दी। पहला घड़ा खोला गया। उससे निकला क्या? पुरानी जूतियों का हार! देखते ही शाहेजहाँ का चेहरा ज़र्द हो गया और बिना और घड़ों को खुलवाये चुपचाप, दरबार से उठकर, वह भीतर महलों मे चला गया।

ऐसा ही एक और उदाहरण सुनिए। वह भी शाहेजहाँ ही के समय का है। देहली में एक मालदार महाजन था। बादशाह के यहां वह बहुत दिनों तक काम करता रहा था। मरने पर उसने कई लाख रुपया छोड़ा। वह उसकी विधवा ने छिपा रक्खा। शाही ख़ज़ाने में उसे उसने नहीं जमा कराया। उस महाजन के एक पुत्र था। वह बड़ा दुःशील और दुराचारी था। उसने अपने पिता का कमाया हुआ धन उड़ाना आरम्भ किया। यह देख कर उसकी मां ने तहख़ाने में ताला बन्द करके कुञ्जी अपने पास रख ली। जब उसके लड़के को रुपया न मिला तब उस मातृ-शत्रु ने बादशाह को ख़बर देने की मूर्खता की। ख़बर पाकर शाहेजहां ने उस महाजन की विधवा को बुलाया। वह हाज़िर हुई। उसको हुक्म हुआ कि दो लाख रुपया वह शाही ख़ज़ाने में दाख़िल करे और एक लाख अपने लड़के को दे। जो कुछ बचे उसे वह अपने लिये रक्खे। यह कह कर शाहेजहाँ ने उस विधवा को तत्काल बाहर जाने की आज्ञा दी। जो लोग

उसे लाये थे वे उसे निकालने लगे। परन्तु वह स्त्री बड़ी धैर्य्यवती और प्रत्युत्पन्न-मति थी। वह उन लोगों से झगड़ने लगी और कहने लगी कि मुझे एक बात बादशाह से कह लेने दो। शाहेजहाँ ने उसका यह कहना सुना और उसको वापस बुला लिया। उसके सम्मुख होने पर बादशाह ने पूछा कि वह क्या कहना चाहती है। यह सुन कर उस स्त्री ने बादशाह को धन्यवाद दिया और इस प्रकार निवेदन किया—"हज़रत सलामत! मेरा लड़का जो मुझ से अपने पिता की सम्पत्ति माँगता है सो तो ठीक है; वह हमारा पुत्र है; इसलिए वह हमारा वारिस है। परन्तु, हाथ जोड़ कर, मैं यह आपसे पूछती हूँ कि मेरे पति से आपका कौन सा रिश्ता था जो आप उसका दो लाख रुपया माँगते हैं? इस सीधे-सादे, परन्तु विलक्षण भाव-गर्भित, प्रश्न को सुन कर शाहेजहां बहुत प्रसन्न हुआ। एक हिन्दू वणिक् से अपने रिश्ते की बात का विचार करके उसे ऐसा कुतूहल हुआ कि वह क़हक़हा मार कर हँस पडा और उसने आज्ञा दी कि अपने पति की सम्पत्ति की वह विधवा ही एक मात्र अधिकारिणी मानी जाय। इस प्रकार उसने अपनी पहली आज्ञा भङ्ग कर दी।

ये आख्यायिकायें मन की गढ़न्त नहीं हैं; सर्वथा सत्य हैं। देहली के सिंहासन पर जब औरङ्गजेब दृढ़ता से आसीन हो गया तब उसने अपने बाप शाहेजहां के साथ कठोरता का वर्ताव बन्द कर दिया। यद्यपि वह आगरे में कैद था, तथापि उसे कोई कष्ट न था। उसके साथ औरङ्गजेब पत्र-व्यवहार भी रखता था। जब औरङ्ग़ज़ेब ने अमीरों के मरने पर उनकी सम्पत्ति को ज़ब्त कर लेना बन्द कर दिया तब शाहेजहां ने उसे एक पत्र लिखा। इस पत्र में उसने लिखा कि पुराने नियमों

को बन्द न करना चाहिए। इस पर औरङ्गज़ेब ने एक लम्बा उत्तर भेज कर इस रस्म को जारी रखने में होनेवाले अन्याय का बहुत ही अच्छा वर्णन किया है। उसने इस पत्र में इन दोनों आख्यायिकाओं का भी निदर्शन किया है और उनसे होनेवाले बादशाही अपमान पर क्रोध भी व्यञ्जित किया है।

२—औरंगज़ेब और मुल्लाजी

औरङ्ग़ज़ेब के विद्यागुरु का नाम मुल्ला सालेह था। जब औरङ्गज़ेब का पढ़ना-लिखना समाप्त हुआ तब शाहेजहाँ ने मुल्लाजी को एक छोटी सी जागीर, काबुल के पास देदी। वहीं वे आनन्द से अपने दिन बिताने लगे। परन्तु जब आपने सुना कि अपने बाप को क़ैद कर के और अपने भाइयों को ठिकाने लगा कर औरङ्ग़ज़ेब ने बादशाही सिंहासन की शोभा बढ़ाई तब आपको, बुढ़ापे में, लालच ने आ घेरा। आप तुरन्त देहली को रवाना हुए और कुछ दिनों में वहां आ विराजे। औरङ्ग़ज़ेब की बहन रौशनआरा से लेकर जितने अधिकारी और अमीर थे सब आपके पक्षपाती थे। बादशाह के मुल्ला को कौन न मान देगा? इसलिए मुल्लाजी को यह दृढ़ आशा थी कि देहली पहुँचते ही आप अमीरों में दाख़िल कर लिये जाँयगे और उस पद के बहुत ही मीठे मोठे फल चखने को पावेंगे। इस आशा से आप देहली पहुँचते ही शाही दरबार में उपस्थित हुए। परन्तु खेद, महाखेद, तीन महीने तक औरङ्ग़ज़ेब ने उनकी तरफ़ आँख उठा कर भी न देखा। जब प्रतिदिन मुल्लाजी के दर्शन लेते लेते वह थक गया तब उसने आज्ञा दी कि मुल्लाजी उससे एकान्त में ऐसे समय मिलें जब उसके

पास केवल हकीमुलमलूक दानिशमन्दख़ाँ और दो तीन और चुनेहुए अमीर हों। आज्ञानुसार मुल्ला सालेह एकान्त में उपस्थित हुए। तब औरङ्गज़ेब ने, उनको सुना कर, इस प्रकार वक्तृता आरम्भ की—

मुल्लाजी! आप मुझसे क्या चाहते हैं? आपकी क्या इच्छा है? क्या आप समझते हैं कि मुझे आपको एक बहुत बड़ा अमीर बना देना चाहिए? अच्छा, तो मैं अब इस बात का विचार करता हूँ कि आप किसी ऐसे पद के योग्य हैं या नहीं। मैं इस बात को मानता हूं कि यदि आप मुझे कोई अच्छी और उपयोगी शिक्षा देते तो आप अवश्य किसी ऊँचेपद को पाने के योग्य समझे जाते। परन्तु आप यह तो फ़रमाइए कि आपने मुझे सिखाया क्या? आपने मुझे यह सिखलाया कि समग्र योरप एक छोटे से द्वीप के बराबर है; और उसमें पोर्चुगल का बादशाह पहले सबसे अधिक शक्तिमान् था; फिर हालैंड का, और उसके बाद इँगलैण्ड का। फ्रांस इत्यादि देशों के बादशाहों के विषय में आपने कहा कि वे हिन्दुस्तान के छोटे छोटे राजों से बढ कर नही, यहां के बादशाहों की प्रभुता के सामने और देशों के बादशाहों की प्रभुता तुच्छ है; हुमायूं, अकबर, जहांगीर और शाहेजहां ही सबसे बड़े सौख्यशाली, सबसे बड़े बहादुर, और सबसे बड़े शक्तिमान् थे; और फारस, उजबेक, काशगर, चीन, तातार, पीगू और शाम के नरेश बादशाहे-हिन्द का नाम सुनते ही काँपते थे। महान् भूगोलवेत्ता! अद्भुत-इतिहासज्ञ! मेरे शिक्षक को क्या यह उचित न था कि वह पृथ्वी की सारी बादशाहतों का सही सही हाल कहता, उनकी सेना, सामग्री और सम्पत्ति का वर्णन करता; उन की युद्ध-प्रणाली, सामाजिक अवस्था, धार्म्मिक विचार

और राज्य-पद्धति का विवरण बतलाता ? क्या उसका यह धर्म्म न था कि वह यथा-नियम इतिहास सिखला कर प्रत्येक बादशाहत की उत्पत्ति, उन्नति और अवनति का कारण मुझको बतलाता; और आकस्मिक घटनाओं तथा राज्य-शासन-सम्बन्धी भूलों का वर्णन करके यह दिखलाता कि उनके कारण कौन कौन से परिवर्त्तन हुए, क्या क्या हानि-लाभ उठाने पड़े, और देश पर उनका कैसा प्रभाव पड़ा ? मनुष्य-जाति के इतिहास से मुझे अच्छी तरह अनभिज्ञ करा देना तो दूर रहा, आपने मुझे मेरे उन पूर्वजों के नाम तक ठीक ठीक न बतलाये जिन्होंने इस विस्तृत बादशाही की नींव डाली थी। उनके जीवन-चरित के विषय में, उनके बादशाह होने की कारणीभूत घटनाओं के विषय में, और उनके विजयी होने में मूल साधनों के विषय में आपने मुझे बिलकुल ही अँधेरे में रक्खा। अपने पड़ोसी देशों की भाषा का जानना बादशाह के लिए बहुत ही आवश्यक बात है; परन्तु आपने मुझे अरबी पढ़ाई। ऐसा करने में शायद आपने यह समझा कि आपने मुझ पर कोई बहुत बड़ा इहसान किया। इसीलिए आपने मेरा बहुत सा समय इस भाषा के सीखने में व्यर्थ ख़र्च कराया। आपने यह न समझा कि बिना दस बारह वर्ष के परिश्रम के कोई भी इतनी क्लिष्ट भाषा में योग्यता नहीं प्राप्त कर सकता। आपने यह न जाना कि कौन कौन से उपयोगी विषयों में एक बादशाह-ज़ादह की शिक्षा होनी चाहिए। आपने बस यह समझा कि उसके लिए व्याकरण की उतनी ही योग्यता दरकार है जितनी कि एक बहुत बड़े व्याकरणी पण्डित को होनी चाहिए। मेरे लड़कपन का अमूल्य समय इस प्रकार आपने नीरस, अनुपयोगी और अन्त-रहित शब्दों को रटाने में व्यर्थ खोया !

क्या आपको यह न मालूम था कि लड़कपन में दी गई शिक्षा कभी नहीं भूलती? क्योंकि उस समय स्मरण-शक्ति प्रवल रहती है। इसलिए लड़कपन में दिये गये सदुपदेश चित्त में जम जाते हैं। उस समय यदि अच्छी शिक्षा दीजाय तो मनुष्य वहुत वड़े वड़े काम करने में समर्थ हो सकता है और उसके विचार परिमार्जित होकर ऊँचे दरजे को पहुँच सकते हैं। क्या विज्ञान और धर्म्मशास्त्र की शिक्षा केवल अरवी ही में दी जा सकती है? क्या ईश्वर का भजन-पूजन और विद्या-ध्ययन हमारी मातृभाषा में नहीं हो सकता? आपने मेरे पिता शाहेजहाँ से यह कहा था कि आप मुझे तत्त्व-विद्या और दर्शन शास्त्र पढ़ाते हैं। यह सच है। मुझे वख़ूवी याद है कि वहुत वर्षों तक मूर्खता से भरी हुई और निरर्थक वातों पर लेक्चर दे दे कर आप मेरा मग़ज ख़ाली करते रहे। आपने मुझे ऐसी वातें सिखलाईं जिनका कुछ काम नहीं पड़ता और जिनसे मनुष्य को ज़रा भी सन्तोष नहीं होता। आपने ऐसी ऐसी कल्पनाओं को मेरे मग़ज़ में भरने की कोशिश की जो विलकुल निःसार थीं, जो वहुत परिश्रमपूर्वक याद करने पर भी शीघ्र ही भूल जाती थीं, और जिन के कारण मनुष्य की वुद्धि कुण्ठित हो जाती है। हाँ, आपने अपनी वह प्यारी तर्क-विद्या मुझे सिखलाई जिससे मेरे जीवन का वहुत सा अमूल्य समय नष्ट गया, और जव मैं आपसे अलग हुआ तव सिवा कुछ अर्थहीन, क्लिष्ट, अटपटे और लम्बे लाक्षणिक शब्दों के आप की विज्ञान-विद्या की और कोई वात मुझे स्मरण न रही। आपसे मैंने वे पारिभाषिक शब्द सीखे जो दर्शन-शास्त्र को जानने का सा भाव दिखलानेवालों ने अपने अभिमान और

अज्ञान को ढकने के लिए गढ़े हैं। ये दर्शन-शास्त्री, आपही के समान, लोगों पर यह प्रकट करते हैं कि वे अपना प्रचण्ड ज्ञान दूसरों को दे कर उनको भी सज्ञान कर सकते हैं; और उनके पेचीदा शब्द-समूह में कोई विलक्षण और लोकोत्तर ज्ञान भरा हुआ है। यदि आपने मुझे वह तर्कना-प्रणाली सिखलाई होती जिसमें कार्य-कारण-भाव प्रधान माना जाता है और जिसमें चित्त को तबतक सन्तोष नहीं होता जबतक किसी वस्तु का सच्चा ज्ञान नहीं हो जाता; यदि आपने मुझे ऐसी शिक्षा दी होती जिससे आत्मा की उन्नति होती है और जिसके कारण विपत्ति आने पर मनुष्य स्थिर रह सकता है; यदि आप ने मुझे मनुष्य के स्वाभाविक धर्म्म सिखलाये होते, सृष्टि की रचना समझाई होती, और उसकी उत्पत्ति और नाश होने का वर्णन किया होता, तो मैं आप का उतनाही कृतज्ञ होता जितना सिकन्दर अरस्तू का हुआ था। बोलिए, क्या राजा और प्रजा के धर्म्म सिखलाना भी आप को उचित न था? यह ऐसा विषय है जिसका जानना बादशाह के लिए बहुत ही आवश्यक है। क्या, कभी स्वप्न में भी आपने मुझे युद्ध-विद्या सिखलाई था व्यूह-रचना सिखलाई, या चढ़ाई करना सिखलाया? सौभाग्य-वश इन विषयों में मैंने आपसे अधिक विज्ञ पुरुषों से सलाह ली। निकलिए! सीधे अपने गाँव को चले जाइए! आज से कभी किसी से यह न कहना कि आप कौन हैं!

जिस समय मुल्लाजी पर वाग्बाणों की यह वर्षा हुई हकीमुलमलूक दानिशमन्दख़ाँ वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने यह व्याख्यान बर्नियर को सुनाया और बर्नियर ने उसे यथावत् अपनी पर्य्यटन-पुस्तक में प्रकाशित किया।

४—शाह अब्बास का बाग़ और ज्योतिषीजी

जिस प्रकार इस देश में ज्योतिष शास्त्र का प्राबल्य है और प्रायः सभी काम अच्छे मुहूर्त में किये जाते हैं उसी प्रकार और भी किसी किसी देश में उसका बड़ा आदर है। उदाहरण के लिए फारिस को लीजिए। वहाँ के नजूमी शाही दरबार तक में प्रतिष्ठा पाते हैं। फ़ारिस में शाह अब्बास नामक एक बहुत ही प्रसिद्ध नरेश हो गया है। "शा-बाश" उसी के नाम का अपभ्रंश है, और किसी अच्छे काम करनेवाले के लिए प्रयोग किया जाता है। वह एक प्रशंसात्मक शब्द हो गया है। शाह अब्बास, उसके ज्योतिषी और उसके माली के विषय में एक आख्यायिका प्रचलित है। सुनिए—

शाह को अपने महलों के पास एक छोटा सा विहार-बाग़ लगाना था। उसके लिए उसने अपने मुख्य बाग़वान को आज्ञा दी। बाग़बान ने बाग़ की ज़मीन को ठीक करके एक दिन वृक्षा-रोपण करना चाहा। तबतक शाह अब्बास को किसी ने सुझाया कि यदि बाग़ लगाने का मुहूर्त निश्चय कर लिया जाता तो अच्छा होता। शाह के भी मन में यह बात जम गई। अत-एव शाही नजूमी बुलाये गये। उन्होंने अपना पोथी-पत्रा देख भाल कर यह निश्चय किया कि एक घण्टे बाद ही बाग़ लगाने के लिए अच्छा मुहूर्त है, और यदि यह मुहूर्त टल जायगा तो बहुत दिनों तक अच्छी घड़ी न आवेगी। नजूमीजी ने कहा कि मुहूर्त में लगाई गई वाटिका शीघ्र ही तैयार हो जायगी और उसको कभी कोई हानि न पहुँचेगी। इसी मुहूर्त में शाह ने पेड़ लगाने चाहे। परन्तु, इस समय, बाग़बान उपस्थित न था। ख़ैर, एक दूसरे आदमी की सहायता से, बतलाये गये मुहूर्त

में, शाह ने अपने हाथ से पेड़ लगाये। यथा-मुहूर्त दिन के एक बजे वृक्षारोपण-विधि निपट गई।

जब बाग़वानजी शाम को आये तब उन्होंने बाग़ में पौधे लगे हुए पाये परन्तु सब उलटे सीधे। जिस क्यारी में अनार लगाना था वहाँ नारङ्गी; जहाँ सेव वहाँ नाशपाती; जहाँ अख-रोट वहाँ बादाम। इसी तरह उसने क्रम-भङ्ग पाया। इस पर उसे बडा क्रोध आया और सब पेड़ उखाड़ कर उसने उन्हें ज़मीन पर रख दिया। यह समाचार जब नजूमी साहब को मिला तब वे आग-बबूला हो गये। आप तुरन्त ही शाह के पास पहुँचे और बाग़वान की गुस्ताख़ी का वर्णन ख़ूब ही नमक मिर्च लगा कर, उन्होंने शाह से किया। शाह ने बाग़बान को तत्काल पकड़ मँगाया। वह जब शाह के सम्मुख उपस्थित हुआ तब वहाँ नजूमीजी भी बैठे थे। शाह ने बाग़वान की ओर आरक्त नेत्र हो कर देखा और कहा—"रे बदज़ात, मैंने अपने हाथ से आज एक बजे जिन पेड़ों को लगाया था उसे तू ने उखाड़ क्यों डाला? वे पेड़ ऐसे अच्छे मुहूर्त में लगाये गये थे कि वैसा अच्छा मुहूर्त अब शायद कभी न आवे; और शायद अब कभी वहाँ पर अच्छा बाग़ न तैयार हो सके। अच्छा मुहूर्त हमेशा नही आया करता। यह सब उस बाग़बान ने चुपचाप सुना। जब शाह अब्बास की वक्तृता समाप्त हुई तब, उनसे कुछ न कह कर, उस बाग़वान ने नजूमीजी की ओर अपना मुँह फेरा और इस प्रकार उनकी स्तुति की। "धन्य आपका ज्योतिष ज्ञान! आप ज्योतिषी नही, महा ज्योतिषी हैं! क्या कहना है! आपके मुहूर्त में लगाया गया बाग़ कुछ ही घंटे बाद उखड़ गया!!! वाह सचमुच वह बहुत ही अच्छा मुहूर्त था!" शाह अब्बास, इन विलक्षण व्यंगों

को सुनकर ख़ूब हँसा और ज्योतिषी महाशय की ओर पीठ करके वहाँ से चल दिया।

५—जानसन का कोश और अश्लील शब्द

विलायत में जानसन नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् हो गया है। उसीने सबसे पहले अङ्गरेज़ी का एक अच्छा शब्द-कोश बनाया। एक दिन एक विदुषी स्त्री ने उससे कहा—"मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि आपके कोश में कोई अश्लील शब्द नहीं आने पाया"। जानसन ने मुसकुराते हुए उत्तर दिया—"हाँ! तो आप वैसे शब्दों को ढूँढती रही हैं!"

६—बड़ों की प्रत्युत्पन्नमति

लार्ड चार्ल्स बेरस्फर्ड इङ्गलैण्ड में एक बहुत बड़े ख़ानदानी अमीर है। आप बड़े शिकारी हैं। आप के बाप भी बड़े शिकारी थे। लड़कपन ही से उनको शिकार का शौक़ था। वे पादरी थे, परन्तु एक दिन रविवार तक को वे शिकार के लिए जाने को तैयार हुए। पादरियों के लिए एक तो शिकार ऐसे ही निषिद्ध है, फिर रविवार को तो और भी। अतएव पादरी साहब के एक मित्र ने उनसे कहा—"क्यों साहब, क्या हमारे महात्मा साधु रविवार को भी शिकार खेलते थे"? इस पर पादरी साहब ने तुरन्त उत्तर दिया—"नहीं। शायद, इस दिन वे और शिकार तो नहीं करते थे, परन्तु, यह मैं बख़ूबी जानता हूँ कि मछली वे ज़रूर मारते थे"। ईसाइयों के पहले बारह गुरु महात्मा कहलाते हैं। उन्हीं लोगों ने बाई-

बल का सम्पादन किया है। वे प्रायः मछुवे थे। इसी बात को ध्यान में रखकर पादरी साहब ने यह उत्तर दिया।

* * *

सेंधिया के पूर्वज पूना के पेशवों के ख़िदमतगार थे। एक बार महादजी सेंधिया पूना गये। वे बड़े वीर थे और बड़े चतुर भी थे। पानीपत की लड़ाई में वे लँगड़े होगये थे; तबसे अच्छी तरह चलने न पाते थे। पूना में पेशवों के सरदारों ने उनकी बुद्धि की परीक्षा करनी चाही। इसलिए उन्होंने एक युक्ति निकाली। उन्होंने निश्चय किया कि कल पेशवा की सवारी हाथी पर बाहर निकलेगी और सब सरदार हाथी के पीछे पैदल चलेंगे। यह समाचार जब महादजी को मिला तब उनको बड़ी चिन्ता हुई। लँगड़े होने के कारण यदि वे घोड़े पर चलें तो भी अनुचित, क्योंकि, और सब लोग पैदल चलेंगे; और यदि पैदल चलना चाहें तो चल न सकेंगे; चलेंगे भी तो पीछे रह जायँगे। यह उनके लिए अपमान की बात होगी। अन्त में उनको एक युक्ति सूझी और उसके अनुसार काररवाई करके वे इस संकट से छूट गये। जब पेशवा हाथी पर सवार होने लगे तब महादजी ने झट उसके जूते हाथ में उठा लिये और उनको लिये हुए वे पेशवा के पीछे हाथी पर सवार होगये। जूते उठाना और मालिक के साथ रहना ख़िदमतगारों का काम ही होता है। इसलिए इसमें महादजी का कोई अपमान न था। उनकी इस चतुरता को देख कर पेशवा की सरदार-मण्डली ने उनकी बड़ी प्रशंसा की।

७—मिल्टन और राजा चार्ल्स का भाई जेम्स

सत्रहवीं शताब्दी में, इंगलैंड में, आलिवर क्रामव्यल नामक एक पुरुष हो गया है। इँगलैंड के राजा प्रथम चार्ल्स की विपक्षी प्रजा का पक्ष लेकर उसने राज-विप्लव मचा दिया और अन्त में चार्ल्स का शिरश्छेद भी किया। चार्ल्स के अनन्तर क्रामव्यल ने 'सर्वसत्वात्मक' नामक प्रजातंत्र राज्य स्थापित कर के आप उसका प्रधान अधिकारी हुआ। परन्तु कई वर्ष व्यतीत होने पर क्रामव्यल की ज्योंही मृत्यु हुई त्योंही 'सर्वसत्वात्मक' प्रणाली की समाप्ति हो गई और प्रथम चार्ल्स का पुत्र इंगलैंड के राजासन पर बैठा। उसका नाम द्वितीय चार्ल्स हुआ। द्वितीय चार्ल्स के एक भाई था, उसका नाम था जेम्स। इस जेम्स का स्वभाव बड़ा ही क्रोधी और कठोर था। द्वितीय चार्ल्स के अनन्तर इंगलैंड का राज्यासन उसी को मिला; परन्तु तीन ही वर्ष में प्रजा ने उसे गद्दी से उतार दिया।

क्रामव्यल के समय में प्रसिद्ध कवि मिल्टन विद्यमान था। इन दोनों का परस्पर बहुत स्नेह था। राजा के विपक्षियों के दल का होने के कारण क्रामव्यल के मरने पर उसे बड़े बड़े कष्ट मिले। यहां तक कि अतिशय प्राणभय और अन्य अनेक कारणों से उसकी दृष्टि भी जाती रही। इसी विपन्न स्थिति में 'पैराडाइज़ लास्ट' नामक विश्वविख्यात महाकाव्य उसने लिखा। द्वितीय चार्ल्स के राजा होने पर वह प्रायः छिपा रहा करता था, परन्तु एक दिन उसकी भेंट चार्ल्स से हो गई। यद्यपि मिल्टन चार्ल्स का वैरी था, तथापि ऐसी विषम दशा में राजा ने उसके घावों पर नमक छिड़कना उचित न समझा।

उस समय चार्ल्स का भाई जेम्स भी उसके साथ था। मिल्टन को देख कर उससे न रहा गया। अतएव उसकी और बुड्ढे तथा अन्धे मिल्टन कवि की कहा-सुनी हुए विना न रही। अन्त में जेम्स ने मिल्टन से कहा—"अरे दुष्ट, क्या तू यह नहीं समझता कि तेरे पापों ही के कारण ईश्वर ने तुझे अन्धा कर दिया है"? यह सुन कर मिल्टन ने उत्तर दिया—"यदि आप ऐसाही समझते हैं तो मैं नहीं कह सकता कि आपके पूज्य पिता ने कितने घोर पाप किये होंगे जो उनको शिरश्छेद रूप दण्ड-भोग करना पड़ा"!

८—आते और जाते समय का आदर

एक वार एक चित्रकार किसी बड़े आदमी की चिट्ठी लेकर फ्रांस के राजा नपोलियन के पास गया। नपोलियन ने उस चित्रकार के मैले कुचैले कपड़े देख कर उसका वहुत ही कम आदर किया और उसे दूर वैठने को आसन दिया। परन्तु जव उसके साथ उसने वातचीत की तव उसे विदित हुआ कि वह वड़ा ही गुणी पुरुष है और चित्र खींचने की विद्या में उसकी वरावरी दूसरा नहीं कर सकता। अतएव जव वह चित्रकार चलने लगा तव नपोलियन ने स्वयं उठकर उससे हाथ मिलाया और द्वार तक उसे पहुँचाने गया। इस प्रकार का सत्कार देख कर चित्रकार को वड़ा आश्चर्य्य हुआ और उसने डरते डरते राजा से पूछा कि "जव मैं आया तव तो आपने मुझे अपने सम्मुख वैठने तक न दिया और जाते समय मुझे यहाँ तक आप पहुँचाने आये; इसका क्या कारण है?" नपोलियन ने उत्तर दिया कि "आते समय जो आदर किया

जाता है वह मनुष्यों के कपड़े-लत्ते देखकर किया जाता है; परन्तु जाते समय जो आदर होता है वह उसके गुणों का विचार करके होता है।"

९—न्यूटन और जलती हुई अँगीठी

न्यूटन ने अपने नौकर को आज्ञा दी कि जहाँ बैठे हुए वह लिख रहा था वहाँ अँगीठी में आग जलाकर रक्खे। उसने आग रख दी। परन्तु थोड़ी ही देर में वह बहुत तेज़ हो गई। इसलिए उसे उठाने अथवा दूर खिसकाने के लिए न्यूटन ज़ोर ज़ोर से अपने नौकर को पुकारने लगा। जबतक वह आवे आवे तबतक न्यूटन का शरीर, जलती हुई आग की प्रचण्ड आँच से झुलस सा गया। नौकर ने आकर अँगीठी उठाई और प्रार्थना की कि "यदि आपही अपनी कुरसी को ज़रा पीछे हटा लेते तो क्या न हटा सकते थे?" यह सुन कर न्यूटन चिल्ला उठा—"मैं सच कहता हूँ मुझे यह बात ही नहीं सूझी।"

---

(३)—प्रकीर्ण-प्रकरण

१—सिकन्दर और पुरन्दर की तोल

ब्रह्मणा तुलितौ लोके सिकन्दर-पुरन्दरौ।
गुरुः सिकन्दरो भूमौ लघुरिन्द्रो दिवंगतः॥

ब्रह्मा ने सिकन्दर और पुरन्दर (इन्द्र) दोनों को तोला तो सिकन्दर भारी और पुरन्दर हलका निकला। इसीलिए सिकन्दर पृथ्वी पर रहा और पुरन्दर आकाश को चला गया!

२—राक्षसी का प्रश्न

ग्रीस देश मे थीब्स नामक एक नगर है। वहाँ, सुनते हैं, किसी समय एक राक्षसी थी। प्राचीनों ने लिख रक्खा है कि वह आधी स्त्री और आधो सिंहिनो थी। उसके पास से जो निकलता था उससे वह एक कूट प्रश्न पूछती थी और उसका ठीक उत्तर न मिलने पर वह उसे खा जाती थी। ईडिप्स नामक एक मनुष्य, उस समय, ग्रीस में बहुत ही चतुर और प्रत्युत्पन्न-बुद्धि था। अन्त में उसने उस राक्षसी के प्रश्न का ठीक उत्तर देकर उसे जीता। उसका प्रश्न यह था—"ऐसा कौन सा प्राणी है जो प्रातःकाल चार पैरों पर, दोपहर को दो पैरों पर और सायंकाल तीन पैरों पर चलता है"! इसे सुन कर, ईडिप्स ने तत्काल उत्तर दिया "मनुष्य"।

३—चिट्ठी का वज़न

एक लड़का एक चिट्ठी लेकर डाकखाने में छोड़ने गया। वहाँ पोस्टमास्टर ने उसे तौला तो वह आधे तोले से अधिक निकली। इस पर उसने लड़के से कहा—

पोस्टमास्टर—"चिट्ठी वजन में आधे तोले से अधिक है। इस पर एक टिकट और लगाना चाहिए"।

लड़का—"पर, बाबू साहब! एक टिकट और लगाने से चिट्ठी का वज़न और बढ़ जायगा न?"

४—गोपाल के माता-पिता

विजयनगर के राजा कृष्णदेव के यहाँ जैसे त्यनालीरामा विकट-कवि था, वैसेही, पूर्व में, नवद्वीप के राजा कृष्णचन्द्र के यहाँ गोपाल भाँड़ नामक विकट-कवि था। एक बार विनोदी गोपाल से राजा कृष्णचन्द्र ने हँसी में पूछा—"गोपाल! हमारे और तुम्हारे शरीर के अवयव कुछ कुछ मिलते हैं। क्या कभी तुम्हारी माता का इस ओर आगमन तो नही हुआ"। गोपाल ने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़ कर, उत्तर दिया—"महाराज! माता तो नहीं किन्तु मेरे पिता इस ओर एक बार आये थे"।

५—गेंद का ग़जब ढाना

फ्रांस की राजधानी पेरिस में एक साहब विलियर्ड खेल रहे थे। इत्तिफ़ाक से गेंद मेज़ से उछल कर खिड़की पर पहुँची। खिड़की की राह से वह पास के एक कमरे में जा

गिरी। वहाँ चीनी मिट्टी की एक क़ीमती तश्तरी रक्खी थी। गेंद के गिरने से वह टूट गई। तश्तरी के पास एक पालतू बिल्ली बैठी थी। वह तश्तरी के टूटने का कड़ाका सुनकर वहाँ से घबराहट में भगी। उसके भागने से एक जलता हुआ लैम्प उलट गया। उसके उलटने से मकान में आग लग गई। अतएव आग को बुझाने के लिए कई यञ्जिन आये और वहाँ हज़ारों आदमियों का शोरोगुल होने लगा। जो साहब गेंद खेलते थे उनकी एक बुढ़िया रिश्तेदार भी, वहाँ, उस समय, बीमार पड़ी थी। इस आग लगने और बुझाने की गड़बड़ में उसे ऐसा धक्का पहुँचा कि वह वहीं रह गई! इसी बुढ़िया की लड़की से साहब की सगाई हुई थी और शीघ्र ही शादी होने वाली थी। अपनी माँ के इस प्रकार मरने से उसने शादी करने से इनकार कर दिया। देखिए एक गेंद ने क्या क्या ग़ज़ब ढाये। खेलाड़ी साहब का मकान भी जला; बुढ़िया भी मरी; भावी बहू से भी उन्हें हाथ धोना पड़ा।

६—घड़ी और स्त्री

फ्रांस देश में फ़ारटेन्यल नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् हो-गया है। एक बार उससे एक स्त्री ने पूछा कि घड़ी और स्त्री में क्या अन्तर है। ऐसा प्रश्न सुनकर उसने मुसकराते हुए उत्तर दिया कि "घड़ी की ओर देखने से समय का ज्ञान होता है और स्त्री की ओर देखने से समय का ज्ञान नहीं होता—अर्थात् यह नहीं जान पड़ता कि कितना समय व्यतीत हो गया। यही दोनों में अन्तर है"!

७—"नराणां मातुलक्रमः"

नवद्वीप के राजा कृष्णचन्द्र के यहां गोपाल भाँड नामक एक विकट-कवि था। वह एक दिन अपने पुत्र को साथ लेकर राजा-कृष्णचन्द्र की सभा में गया। राजा ने उससे पूछा—"यह किसका पुत्र है"? गोपाल ने कहा, "मेरा"। यह सुनकर राजा ने कहा कि क्या कारण है जो इसका रूप-रङ्ग मेरे रूप-रङ्ग से मिलता है? गोपाल ने इसका भावार्थ समझ कर तत्काल उत्तर दिया। उसने कहा, "महाराज! आपका प्रश्न बहुत ठीक है। शास्त्र में लिखा है "नराणां मातुलक्रमः" अर्थात् मनुष्य मामा के अनुरूप होता है। इसीलिए तो यह ऐसा हुआ!"

८—ली हङ्ग चङ्ग और बुल-डाग कुत्ता

ली हङ्ग चङ्ग चीन-नरेश के प्रधान मन्त्री थे। उनको मरे अभी थोड़े ही दिन हुए। कोई दो वर्ष हुए होंगे वे इंगलेंड गये थे। जिस समय वे लन्दन में थे, उनके एक अँगरेज़ मित्र ने उनको एक बहुत ही अच्छा 'बुल-डाग' कुत्ता भेजा कि वह उनके द्वार पर रक्षक का काम करे। उस कुत्ते को पाकर, सुनते हैं, ली हङ्ग चङ्ग ने अपने मित्र को यह पत्र भेजा—

"मेरे प्रिय,

आप ने जो कुत्ता भेजा उसके लिए मैं आपको अनेक धन्यवाद देता हूं। मैंने बहुत दिन से इस प्रकार का पदार्थ खाना छोड़ दिया है। इसलिए आपके भेजे हुए कुत्ते को मैंने अपने सेवकों को दे डाला। वे मुझसे कहते हैं कि ऐसी स्वादिष्ट वस्तु उन्होंने आजतक कभी नहीं चखी थी!

आपका स्नेहशील,

ली हङ्ग चङ्ग।"

९—सबेरे उठने का फल

एक मनुष्य प्रतिदिन, अपने लड़के को सवेरे उठने के लिए उपदेश दिया करता था परन्तु जब उसने देखा कि उसका उपदेश बराबर निष्फल जा रहा है तब उसने अपने उपदेश का लाभ प्रमाण-पूर्वक दिखलाना चाहा। उसने कहा—"मन्नू! देख, कमला आज सवेरे उठा था; इसलिए, रास्ते में उसे एक बहुत ही अच्छी चित्रों की किताब पड़ी हुई मिली।" मन्नू ने हँसते हँसते उत्तर दिया—"बाबा! जिसकी वह किताब होगी वह तो कमला से भी पहले उठा होगा न"!

१०—संसार की असारता

इस संसार के विषय में एक स्वदेशी पण्डित और एक अँगरेज़ विद्वान् में परस्पर बातचीत चली। पण्डित ने कहा कि संसार अनेक आपदाओं का घर है; युद्ध, अकाल और प्लेग आदि से उजाड़ होता जाता है। प्रतिदिन मनुष्यों को नई नई विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। इसमें अब रहना कण्टकमय हो गया है। यह सुन कर अँगरेज़ विद्वान् ने धीरे से कहा—"Y..., you are right; the world is not worth living except after 11 p. m. in the night"! अर्थात् रात के ११ बजे के पहले यह संसार रहने के योग्य नहीं!!

११—रुपये की आड़ में ईश्वर का लोप

एक धनी मनुष्य को ईश्वर पर विश्वास न था। एकबार एक विद्वान् पण्डित ने कागज़ के एक टुकड़े पर "ईश्वर" शब्द लिख कर उसे उसको दिखलाया और पूछा—"क्या आप इसे देख सकते हैं?" उत्तर मिला—"हाँ"। इस पर उस विद्वान् ने "ईश्वर" शब्द के ऊपर एक रुपया रखकर उसे ढक दिया और फिर पूछा—"क्या अब भी आप इसे देख सकते हैं?" इस युक्ति का जैसा विलक्षण असर उस मनुष्य पर हुआ उसके कहने की आवश्यकता नहीं।

१२—लड़की के स्तन्यपान से जीवन-रक्षा

प्राचीन समय में रोमन लोग किसी किसी अपराधी को निराहार रहने का दण्ड देते थे। ऐसे अपराधी प्रायः एक सप्ताह से अधिक न जीते थे। एक बार इस प्रकार का एक अपराधी महीने भर तक जीता रहा। अतएव इस बात की खोज होने लगी कि क्या कारण है जो यह अभी तक नहीं मरा। उस पर रक्षकों की कड़ी दृष्टि रहने लगी। उसके पास केवल उसकी युवा लड़की उससे मिलने के लिए रोज़ आती थी। उसी पर रक्षकों का सन्देह हुआ। वह कोई भी खाने की वस्तु भीतर न ले जाने पाती थी। तिसपर भी जब उस अपराधी में मरने के कोई लक्षण न दिखलाई पड़े तब रक्षकों ने उस लड़की की अधिक देख भाल करना आरम्भ किया। एक दिन उन्होंने छिप कर देखा तो वह लड़की पिता को अपना दूध पिला रही थी। इसी स्तनपान के बल से वह इतने

दिनों तक जीवित था। जब यह बात रोम के प्रधान अधिकारी को मालूम हुई तब उसने उसका अपराध क्षमा कर दिया। उसने कहा कि जिसकी सन्तति इतनी पितृ-भक्त है वह वध किये जाने के योग्य नही।

१३—दुःशील पुत्र

एक बाबू साहब यद्यपि अच्छे पद पर थे और यद्यपि उनको रुपये पैसे की कमी न थी, तथापि पिता की वे कुछ भी सहायता न करते थे। पिता दरिद्र का दरिद्र ही था। एक दिन पिता महाशय अपने कलियुगी पुत्र से मिलने चले और घर का पता ठीक न मालूम होने के कारण पुत्र के दफ़्तर ही में सीधे चले गये। वहाँ दरिद्र-भेष में जाकर वे पुत्र के पास बैठ गये। उनको देख कर पुत्र के दफ़्तर के एक बाबू साहब ने पूछा—"ये कौन हैं"? पितृभक्त पुत्र ने कहा—"ये हमारे आत्मीय हैं; हमारे ही घर में रहते हैं"। वृद्ध पिता से और नहीं सहा गया। उसने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया—"बाबूजी ठीक कहते हैं; आपकी माँ हमारी प्रीति-पात्र है इसीलिए हम वहाँ रहते हैं"!

१४—कोश में रुपये

एक मनुष्य ने कहा—"हम को एक ऐसा स्थल विदित है जहाँ सबको सब काल रुपया मिल सकता है"। दूसरे ने बड़ी उत्कण्ठा से पूछा—"कहाँ भाई! बतलाइए ना!" उसने धीरे से उत्तर दिया—"कोश (डिक्शनरी) में"!

१५—ज्ञान होने पर भी विवाह !

एक सुधारक-शिरोमणि लड़के के पिता से कहने लगे कि जबतक लड़के को ज्ञान न हो तबतक उसका विवाह न कीजिएगा। पिता ने उत्तर दिया—"ज्ञान होने पर भी क्या कभी कोई विवाह करता है ?"

१६—गरमी और सर्दी में भेद

शिक्षक—गरमी और सर्दी में क्या भेद है ?

विद्यार्थी—गरमी का गुण फैलना और सर्दी का संकुचित होना है। यही दोनों में भेद है।

शिक्षक—ठीक; अच्छा एक उदाहरण दो।

विद्यार्थी—ग्रीष्म ऋतु में गरमी अधिक पड़ती है; इसी से दिन फैल कर बड़ा हो जाता है। और जाड़े में सर्दी अधिक पड़ती है, इसीसे दिन संकुचित होकर छोटा हो जाता है।

१७—जादू का खच्चर

स्कूल के लड़के प्रायः बड़े ही नटखट होते हैं। यह बात इसी देश में नहीं, किन्तु सभी देशों में पाई जाती है। एक बार विलायत के आक्सफर्ड-कालेज के दो तीन लड़के बाहर घूमने निकले। शहर से दो तीन मील निकल जाने पर उन्हें लदा हुआ एक ख़च्चर मिला। वह एक पेड़ से बँधा हुआ था और वहीं उसका मालिक पड़ा सो रहा था। ख़च्चर एक फेरीवाले का था। सौदा बेचने के लिए दिन भर घूमते घूमते वह थक गया था।

इसलिए थकावट के मारे वहाँ पर वह लेट गया और लेटते ही सो गया। यह दशा देखकर जेम्स नामक लड़के ने कहा—

जेम्स—मैं कुछ कहना चाहता हूँ। यदि सुनो तो कहूँ।

वर्टी—कहोगे भी।

जेम्स—मैंने रुपये पैदा करने की एक सहज युक्ति निकाली है।

स्मिथ—कहते क्यों नहीं, कौन सी युक्ति निकाली है।

जेम्स—मेरे ऊपर इस खच्चर पर का सामान लाद दो। मैं यहाँ हाथ पैरों के बल खड़ा रहूँगा। तुम इस ख़च्चर को लेकर बाज़ार मे बेचदो और जो कुछ मिले उसके बराबर बराबर तीन हिस्से कर के हम लोग परस्पर बाँट लें।

वर्टी—और यह फेरी वाला तुमको ख़च्चर बनावे तो?

जेम्स—उसको तुम कुछ भी परवा न करो; मैं उससे निपट लूँगा।

इस प्रकार सलाह पक्की हो जाने पर जेम्स के ऊपर ख़च्चर पर लदा हुआ सामान रख दिया गया। वह वहीं लद कर खड़ा रहा। उसके साथियों ने ख़च्चर को लेकर बाज़ार का रास्ता लिया और वहाँ उसे बेच डाला।

यहाँ फेरी वाला जब जगा तब उसने जेम्स में ख़च्चर का रूपान्तर हुआ देखा। उसने जेम्स से पूछा कि यह क्या मामला है? जेम्स ने कहा—

"मेरा बाप जादूगर है। मैं उसे बहुत तंग करता था। इसलिए क्रोध में आकर उसने मुझे गधा बना दिया। गधे के रूप में मैं बहुत दिन तक रहा। अब मेरे बाप के हृदय में दया का सञ्चार हुआ है। इसलिए उसने, मेरे अपराधों का प्रायश्चित्त करा के, अब फिर मुझे मनुष्य बना दिया है। आप भी अब

दया कर के यदि मुझे छोड़ दें तो मैं अपने बाप के पास जाकर अपना कृतज्ञता प्रकट करूँ और अपने अपराधों की क्षमा माँगूं"।

यह सुन कर फेरीवाला आश्चर्य से चकित हो गया। जादू का गधा कौन रखना चाहेगा? अतएव उसने जेम्स को छोड़ दिया और वह हँसते हुए अपने साथियों से जा मिला। कुछ दिनों में उस फेरीवाले को दूसरे खच्चर की आवश्यकता हुई। इसलिए वह बाजार गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि एक मनुष्य, उसका वही पहला खच्चर, बेचने के लिए खड़ा है। उसे देख कर फेरी वाले ने कहा—

"हाय! हाय! क्या इतने में फिर तेरा और तेरे बाप का झगड़ा हो गया? तू महा अभागी है"।

यद्यपि मालिक ने अपने खच्चर की बहुत बड़ाई की तथापि जो कुछ हो चुका था उसका स्मरण करके उस फेरीवाले को वह खच्चर लेने का फिर साहस न हुआ।

१—राज-प्रकरण

(१)

सुनते हैं, एक वार, राजा विक्रमादित्य को प्यास लगी और उसने अपने सेवक से पानी माँगा। सेवक कवि था। राजा ने कहा—

स्वच्छं सज्जनचित्तवल्लघुतरं दीनार्तिवच्छीतलं
पुत्रालिङ्गनवत्तथैव मधुरं तद्बाल्यसंजल्पवत्।
एलोशीर-लवङ्ग-चन्दन-लसत्कर्पूर-कस्तूरिका—
जातीपाटलिकेतकैः सुरभितं पानीयमानीयताम्॥

सज्जन के चित्त के समान स्वच्छ; दीनजन की आर्ति के समान हलका; पुत्र के आलिङ्गन के समान शीतल; उसीकी; अर्थात् पुत्र की, तोतली बातों के समान मीठा; इलायची, खस, लौंग, चन्दन, कपूर, कस्तूरी, केतकी इत्यादि से सुगन्धित किया गया पीने का पानी ला दो।

इस आज्ञा को सुनकर विक्रमादित्य के सेवक ने विनय किया—

(२)

वक्त्राम्भोजे सरस्वत्यधिवसति सदा शोण एवाधरस्ते
बाहुः काकुत्स्थ वीर्य-स्मृतिकरण पटुर्दक्षिणस्ते समुद्रः।
वाहिन्यः पार्श्वमेताः कथमपि भवते नैव मुञ्चन्त्यभीक्ष्णं
स्वच्छे चित्ते कुतोऽभूत्कथय नरपते तेऽम्बुपानाभिलाषः॥

आपके मुख में सब काल सरस्वती (सरस्वती, नदी का भी नाम है) वास करती है; आपका ओंठ सदा शोण (सोनभद्र नद भी) अर्थात् लाल है; आपका हाथ रामचन्द्र के पराक्रम का स्मरण करने वाला दक्षिण (दाहिना) समुद्र (मुद्रिका आदि बाहु-भूषण-चिह्नधारी) है; वाहिनी अर्थात् सेनायें (नदियों को भी वाहिनी कहते हैं) आपका साथ एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ती। इसलिए, हे नरेश! कृपापूर्वक कहिए, आपके स्वच्छ चित्त में पानी पीने की अभिलाषा कैसे उत्पन्न हुई? शोण और सरस्वती आदि अनेक नदियों के सिवा समुद्र तक जिसके शरीर ही के अन्तर्गत है उसका प्यासा होना, सचमुच, आश्चर्य की बात है।

(३)

एक निर्धन कवि लक्ष्मी से प्रार्थना करता है—

निद्राति, स्नाति, भुङ्क्ते, चलति, कचभर
शोषयत्यन्तरास्ते,
दीव्यत्यक्षैर्नचायं गदितुमवसरो
भूय आयाहि, याहि।
इत्युद्दण्डैः प्रभूणामसकृदधिकृतै-
र्वारितान् द्वारि दीना-
नस्मान् पश्याब्धिकन्ये! सरसिरुहरुचा-
मन्तरङ्गैरपाङ्गैः॥

अभी वे सो रहे हैं; इस समय स्नान कर रहे हैं, यह भोजन का समय है, अब टहलते हैं; अब केश सुखा रहे हैं; इस समय अन्तःपुर में हैं, अभी वे खेल रहे हैं; यह समय भेंट करने का नहीं; जाओ, फिर कभी आना। इस प्रकार धनवानों के द्वार से

नके उद्दण्ड अधिकारियों द्वारा बार बार निकाले गये हम दीन निर्धनी जनों की ओर, हे देवी लक्ष्मी! अपने कमलकोमल-कटाक्षों से एक बार तो देख लेती!

(४)

एक दरिद्र पण्डित घूमते घामते सिंहल पहुँचे। वहाँ के राजा ने उनको इतना दान दिया कि सङ्कल्प के जल की नदी बह निकली। इस पर पण्डितजी राजा से कहते हैं—

यो गङ्गामतरत्तथैव यमुनां यो नर्मदां शर्मदां
का वार्ता सरिदम्बुलङ्घनविधौ यस्तीर्णवानर्णवान्।
सोऽस्माकं चिरमास्थितोऽपि सहसा दारिद्रनामासखा
त्वद्दानाम्बुसरित्प्रवाहलहरीमग्नो न सम्भाव्यते॥

जो हमारे साथ गङ्गा भी उतर आया; यमुना भी उतर आया; कल्याणकारी नर्मदा भी पार कर आया; नदियों को बात जाने दीजिए, समुद्र तक को भी उल्लंघन जिसने किया; बहुत दिन तक हमारे साथ रहनेवाला दरिद्र नामक हमारा वही पुराना साथी, आज आपके दानजल की नदी के प्रवाह में डूब गया! अब उसका कहीं पता तक नहीं लगता।

(५)

श्रीकण्ठचरित काव्य का कर्ता मङ्खक नामक एक कवि काश्मीर में हो गया है। श्रीकण्ठचरित की रचना करके, काश्मीर के प्रसिद्ध प्रसिद्ध पण्डितों की सभा में सुनाने की, इच्छा से, उसे वह वहाँ ले गया। वहाँ कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र के दूत सुहल नामक पण्डित ने उसे यह समस्या दी—

एतद्ववभ्रुकचानुकारे किरणं राजद्रुहोऽह्न शिर—
श्छेदाभं वियत. प्रतीचि निपतत्यब्धौ रवेर्मण्डलम् ।

अर्थात्—नेवले के अथवा पीताभ वालों के सदृश पीली किरणों को प्रकट करता हुआ सूर्य का यह विम्ब, चन्द्रमा का द्रोह करनेवाले दिन के कटे हुए सिर के समान, आकाश से पश्चिम समुद्र में गिरता है ।

यह समस्या हुई । इस में 'राज' शब्द के दो अर्थ हैं—एक चन्द्रमा और दूसरा राजा अथवा स्वामी। चन्द्रमा और दिन का परस्पर द्रोह सिद्ध ही है; और राजा अथवा स्वामी का द्रोह करने वाले का शिरच्छेद होना भी उचित ही है । यही इस समस्या में चमत्कार है । इसकी पूर्ति मङ्खक ने इस प्रकार की—

एषापि द्युरमा प्रियानुगमनं प्रोद्दामकाष्ठोत्थिते
सन्ध्याग्नौ विरचय्य तारकमिषा - ज्जातास्थिशेषस्थितिः ॥

अर्थात् - दिशाओं में उत्पन्न हुई सन्ध्यारूपी प्रचण्ड अग्नि में अपने प्रियतम का अनुगमन करके आकाश-मण्डल की यह शोभा भी ताराओं के वहाने अस्थिशेष होगई । इस पूर्ति में भी एक शब्द द्व्यर्थिक है । वह 'काष्ठा' है। उसका अर्थ दिशा है; परन्तु 'काष्ठा' और 'काष्ठ' (लकडी) इन दोनों के साथ 'उत्थिते' की सन्धि होने से 'काष्ठोत्थिते' यह एक ही रूप होता है। अतएव इस पद से लकड़ी का भी अर्थ व्यञ्जित होता है । सायकाल, सूर्यास्त के समय, पश्चिम दिशा अग्नि के समान अरुण हो जाती है, यह प्रतिदिन ही देखते हैं । यहाँ पर वही अग्नि मानी गई है। मङ्खक का यह आशय है कि जव दिन का सिर कट गया, और सूर्य

का विम्ब आकाश से गिरकर समुद्र में डूब मरा, तब आकाश-लक्ष्मी अर्थात् दिन की शोभा भी पति का अनुगमन करने के लिए सती हो गई, और अपने अनुगमन को स्पष्ट रूप से बतलाने के लिए अपनी हड्डियों के टुकड़े ताराओं के बहाने आकाश में छोड़ गई। प्राचीन कवियों की प्रतिभा बड़ी ही विलक्षण थी।

(६)

शूली जातः कदशनवशाद्भैक्ष्ययोगात् कपाली
वस्त्राभावाद्गगनवसनः स्नेहशून्याज्जटावान्।
इत्थं राजन् तव परिचयादीश्वरत्वं मयाप्तं
तस्मान्मह्यं किमिति कृपया नार्द्धचन्द्रं ददासि ॥४॥

एक कवि ने किसी राजा से अपनी दीनता वर्णन करके उससे साहाय्य-प्रार्थना करनी चाही। पर वह मन में डरा कि कहीं मैं सभा से निकाल बाहर न किया जाऊँ। अतएव वह कहता है—

"बुरा अन्न खाने से मैं शूली (शूलरोगी और त्रिशूल-धारी) हो गया हूँ; भिक्षा माँगने से कपाली (कपालधारी साधारण भिक्षुक और कपाली = शिव) हो गया हूँ; पहनने के लिए वस्त्र न होने से दिगम्बर हो गया हूँ; स्नेह (तेल) के न होने से जटाधारी हो गया हूँ; इस प्रकार हे राजन्! तेरे परिचय से ईश्वरत्व (शिवत्व, शिवरूपता) तो प्रायः मुझे मिल गया। केवल अर्द्धचन्द्र (गलहस्त) अभी तक मुझे नहीं मिला। वह भी यदि आपकी बदौलत मिल जाता तो मैं पूरा ईश्वर हो जाता।

(७)

यथा यथा ते सुयशोऽभिवर्द्धते
सितां त्रिलोकीमिव कर्तुमुद्यतम्।
तथा तथा मे हृदयं विद्यते
प्रियालकालीधवलत्वशङ्कया॥

एक कवि एक राजा के सुयश की प्रशंसा में कहता है—इस त्रिलोकी को सफेद सी कर देने के लिए उद्यत हुआ आपका यह सुयश ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है त्यों त्यों मेरा कलेजा अधिक अधिक काँपता है। क्यों भई, ऐसा क्यों? "क्यों क्या? मुझे डर लगता है कि कहीं मेरी प्रियतमा की अलकें न सफ़ेद हो जायँ? वे भी तो त्रिलोकी ही में हैं, उसके बाहर तो नहीं!"

(८)

सर्वदा सर्वदोऽसीति त्वमिथ्या कथ्यसे बुधैः।
नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः॥

एक कवि एक राजा की व्याज-स्तुति करता है—हे राजन्! विद्वान् लोग आपके विषय में जो यह कहते हैं कि आप 'सर्वद' हैं, अर्थात् सब कुछ दे डालनेवाले हैं, सो झूठ है। आज तक आपने न तो किसी शत्रु को अपनी पीठ ही दी और न किसी परस्त्री को अपना वक्षःस्थल हृदय ही दिया। फिर आप सब कुछ दे डालनेवाले कैसे?

(९)

हाथियों को दे डालने में भोज की उदारता पर भोजप्रबन्ध में एक श्लोक है—

निजानपि गजान् भोजं ददानं प्रेक्ष्य पार्वती ।

गजेन्द्रवदनं पुत्रं रक्षत्यद्य पुनः पुनः ॥

अर्थात् और हाथियों की तो बात ही क्या है, राजा भोज को स्वयं अपने भी हाथियों को याचकों को देता देख, हाथी के मुखवाले अपने पुत्र गणेश की रक्षा, उसकी माता पार्वती बड़ी दक्षता से कर रही है। क्यों? उसे डर लगता है कि गणेश को हाथी समझ कर कहीं भोज उसे भी किसी को न दे डाले! यह श्लोक विलोचन कवि के नाम से भोजप्रबन्ध में लिखा है। चाहे जिसका रचित हो; है यह प्राचीन अवश्य। इसका आशय लेकर पद्माकर ने नीचे दिया हुआ पद्य रघुनाथराव पेशवा की प्रशंसा में सुनाया था—

सम्पति सुमेरु की कुबेर की जो पावै कहूँ

तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना।

कहै पद्ममाकर सुहेम हय हाथिन के

हलके हजारन को वितर विचारै ना॥

गंज गज वकस महीप रघुनाथराउ

याही गज धोखे कहूँ तोहिँ देइ डारै ना।

याते गौरि गिरिजा गजानन को गोय रही

गिरिते गरे ते निज गोद ते उतारै ना॥

सुनते हैं, रघुनाथराव ने इस पद्य को सुन कर, पद्माकर को एक लाख रुपया इनाम दिया था! यदि एक लाख न दिया होगा तो कुछ तो अवश्य दिया होगा। मोल कवियों की मनोहर उक्तियों का होता है; शब्द-रचना का नहीं। अतएव, पेशवा की सभा पण्डितों से परिपूर्ण होकर भी क्या किसी पण्डित ने यह न

गा होगा कि पद्माकरजी का भाव पुराना है? शायद कवि को पुरस्कार पाने में बाधा डालना पातक समझ कर सभास्थित पण्डित चुप रहे हों। हिन्दी के अनेक कवियों ने संस्कृत के उत्तमोत्तम श्लोकों का आशय लेकर कविता की है। पद्माकर जैसे प्रसिद्ध कवि ने ऐसा करने में जब कोई दोष नहीं समझा, तब यदि आजकल के कवि प्राचीन संस्कृत-पद्यों की छाया अथवा उनका भाव लेकर हिन्दी में कविता करें तो वे क्षमापात्र हैं। पद्माकर के पद्य का भाव यद्यपि पुराना है, तथापि कहने की प्रणाली और शब्दों की यथा स्थान स्थापना प्रशंसनीय है।

(१०)

एक पण्डित किसी राजा के यहाँ बहुत दिन तक ठहरे रहे। बिदाई न हुई। एक दिन सभा में आप खिन्नवदन बैठे थे। राजा ने पूछा—पण्डितजी, क्या सोच रहे हो? तब आपने यह श्लोक पढ़ा—

सुस्वादुयुक्तानि सुकोमलानि
पत्नीकराग्राङ्गुलिपीडितानि।
किं किं ददामीति सुभाषितानि
स्मरामि राजन् गृहभोजनानि॥

'और क्या क्या दूँ?' इस तरह मीठे मीठे वचनों को सुनते हुए खूब स्वादिष्ठ, खूब कोमल और पत्नी के करकमल से खूब पीडनपूर्वक बनाये गये, अपने घर के भोजनों का, राजा साहब, मुझे स्मरण हो रहा है।

२-कवि-काव्य-प्रकरण

(१)

पातु वो निकषग्रावामतिहेम्नः सरस्वती।
प्राज्ञेतरपरिच्छेदं वचसैव करोति या॥

मतिरूपी सुवर्ण को आप सरस्वतीरुपी कसोटी पर कसिए। ऐसा करने से तत्कालही वह मूर्ख और विद्वान् का भेद बतला देगी। ऐसी सरस्वती आप का कल्याण करे।

(२)

नाहूतापि पुरः पदं रचयति प्राप्तोपकण्ठं हठात्
पृष्टानप्रतिवक्ति कम्पमयते स्तम्भं समालम्बते।
वैवर्ण्यं स्वरभङ्गमञ्चितमां मन्दाक्षमन्दानना
कष्टं भोः प्रतिभावतोऽप्यधिसमं वाणी नवोढायते॥

बुलाने पर भी वह पदरचना नहीं करती (पैर नहीं बढ़ाती) हठपूर्वक कण्ठ के निकट (उपकण्ठ=पास) प्राप्त होने पर पूछने से भी उत्तर नहीं देती—कुछ नहीं कहती; काँपने लगती है; स्तम्भित हो जाती है; विवर्ण और स्वरभङ्ग को प्राप्त होती है; लज्जा से सिर झुका लेती है; किंवा मुख में मन्द-भाव को धारण कर लेती है। कैसे कष्ट की बात है कि सभा में प्रतिभावानों की भी वाणी नवोढ़ा स्त्री के समान आचरण करने लगती है!

(३)

सत्यं सन्ति गृहे गृहे सुकवयो येषां वचश्चातुरी
स्वे हर्म्ये कुलकन्यकेव लभते जाता गुणैर्गौरवम्।
दुष्प्राप स तु कोऽपि कोविदपतिर्यद्वाग्रसग्राहिणी
पण्यस्त्रीव कला-कलाप-कुशला चेतांसि हर्तुं क्षमा॥

ऐसे कवि तो सचमुच घरघर भरे पड़े हैं जिनके वचनों की चतुरता को, कुल-कन्या के समान, घर ही के घेरे में गौरव प्राप्त होता है। परन्तु ऐसे कवि बहुत ही कम देखने में आते हैं जिनकी रसग्राहिणी वाणी, कला-कुशल वाराङ्गना के समान, चित्तको हरण कर सकती है।

(४)

पठन्तु कतिचिद्धठात् ख, फ, छ, ठेति वर्णच्छटा
घट . पट इतीतरे पटु रटन्तु वाक्पाटवात्।
वयं बकुलमञ्जरीगलदनल्पमाध्वी झरी—
धुरीणगणरीतिभिर्भणितिभिः प्रमोदामहे॥

ख, फ, छ, ठ, इत्यादि वर्णों की छटाओं को दिन रात घोखते हुए हठपूर्वक चाहे कोई भले ही व्याकरण पढ़े। और घट, पट इत्यादि शब्दों को रटते हुए तर्क-शास्त्र के अध्ययन में चाहे कोई भले ही पटुता दिखलावे। परन्तु हमको यह बिलकुल पसन्द नहीं। हमें तो, खिले हुए बकुल के फूलों के मधुर रस से भी मीठे कवियों के वचन ही अधिक प्यारे लगते हैं! हम उन्हीं का पाठ करके प्रसन्न होते हैं।

(५)

स्तुवन्ति गुर्वीमभिधेयसम्पदं
विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चितः।

इति स्थितायां प्रतिपूरुष रुचौ

सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः ॥

कोई कोई विद्वान् कहते हैं कि अर्थ की गम्भीरता ही सब से श्रेष्ठ गुण है ; वे उसी की प्रशंसा करते हैं। कोई कहते हैं, नहीं शब्द, पद और वाक्य आदि की शुद्धता ही को प्रधानता दी जा सकती है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य की रुचि भिन्न होने के कारण, सबका एकसा मनोरञ्जन करनेवाली वाणी का होना सर्वथा दुर्लभ है। यह श्लोक किरातार्जुनीय काव्य के चौदहवें सर्ग का है।

(६)

तया कवितया किं वा कि वा वनितया तया।

पदविन्यास-मात्रेण मनो नापहृतं यया ॥

जो पदस्थापना-मात्र ही से मन को न हरण करले वह कविता भी किसी काम की नहीं और वह वनिता भी किसी काम की नहीं। इसमें 'पद' शब्द के दो अर्थ हैं। यह ध्यान में रखना चाहिए।

(७)

कर्णाऽमृतं सूक्तिरसं विमुच्य

दोषेषु यत्नः सुमहान् खलस्य।

अवेक्षते केलिवनं प्रविष्टः

क्रमेलकः कण्टकजालमेव ॥

अच्छी अच्छी उक्तियों के अमृतवत् मीठे रस का स्वाद न लेकर, बुरे आदमी दोष ही दोष ढूँढ़ते फिरते हैं। अनेक प्रकार के पेड़ों से भरे हुए वन में जाकर भी ऊँट काँटेदार बबूल ही की ओर झुकता है।

(८)

सरसो विपरीतश्चेत्सरसत्वं न मुञ्चति ।

साक्षरा विपरीताश्चेद्राक्षसा एव केवलम् ॥

जो लोग सरस (अर्थात् रसिक) हैं वे यदि विपरीत हो गये तो भी वे सरसता को नहीं छोड़ते; परन्तु जो लोग साक्षर (अर्थात् 'ज्ञानलव-दुर्विदग्ध') हैं, वे यदि विपरीत हुए तो साक्षात् राक्षस हो जाते हैं। 'सरस' का उलटा 'सरस' ही रहता है परन्तु 'साक्षराः' का उलटा 'राक्षसाः' हो जाता है।

(९)

हे हेमकार ! परदुःख-विचारमूढ !

किं मां मुहुः क्षिपसि वारशतानि वह्नौ ।

दग्धे पुनर्मयि भवन्ति गुणातिरेका

लाभः परं खलु मुखे तव भस्मपातः ॥

एक ग्रन्थकार, सोने की अन्योक्ति द्वारा, किसी अविवेकी समालोचक की निन्दा करता है—हे सुवर्णकार ! तुझे दूसरे के दुःख का निःसशय कुछ भी विचार नहीं। क्यों भला मुझे तू वार वार आग में डालता है ? तपाने से उलटा मेरे गुणों का विकाश होता है। परन्तु तुझे क्या लाभ होता है ? तेरे मुँह में केवल खाक जाती है।

(१०)

कतिचिदुद्धतनिर्भरमत्सराः कतिचिदात्मवचःस्तुतिशालिनः ।

अहह ! केऽपि निरक्षरकुक्षयस्तदिह सम्प्रति कं प्रति मे श्रम ॥

कोई तो मत्सर में गले तक डूब कर उद्धत हो रहे हैं; कोई अपनी ही कविता की स्तुति में लगे हुए हैं, उन्हें और कुछ

अच्छा हो नहीं लगता; कोई कोई बिलकुल ही निरक्षर-भट्टाचार्य हैं, उनसे कुछ मतलब ही नहीं। तो अब आपही कहिए, कविता करने का श्रम यदि उठाया जाय तो किसके लिए ?

(११)

तथापि क्रियते ग्रन्थः सन्ति यद्यपि दुर्जनाः।
न हि दस्युभयाल्लोके दैन्यवानिह वर्त्तते॥

दुर्जनों की कमी नही है, तथापि हमें जो कुछ लिखना है हम लिखेंहीगे। चोरों के डर से दुनिया में क्या कोई निर्धन रहना भी पसन्द करता है ?

(१२)

दुर्जनहुताशदग्धं काव्यसुवर्णं विशुद्धिमुपयाति।
दर्शयितव्यं तस्मान्मत्सरमनसः प्रयत्नेन॥

काव्यरूप सुवर्ण दुर्जन रूप आग में दग्ध होने से और भी अधिक विशुद्ध हो जाता है। अतएव मत्सरशील मनुष्य को उसे हर प्रयत्न से दिखाना चाहिए।

(१३)

स्वयमपि भूरिच्छिद्रश्चापलमपि सर्वतोमुखं तन्वन्।
तितउस्तुषस्य पिशुनो दोषस्य विवेचनेऽधिकृतः॥

दूसरे के उत्कर्ष को न सहनेवाले दुःशील जनों की दशा चालनी की जैसी है। खुद सैकड़ों छेदों से परिपूर्ण होकर भी और सब तरफ़ चञ्चलता किंवा व्यर्थ वाचालता प्रकट करके भी, वे समझते हैं कि उन्हें दोषरूपी चोकर निकालने का अधिकार है।

(१४)

विपुलहृदयाभियोग्ये खिंद्यति काव्ये जडो न मौर्ख्ये स्वे ।

निन्दति कञ्चुककारं प्रायः शुष्कस्तनी नारी ॥

जड आदमी अपनी मूर्खता पर तो खेद नहीं प्रकट करता; पर सैकड़ों सहृदय जनों के हृदयों को आनन्दित करनेवाली कविता को बुरी बतला कर जरूर खेद प्रदर्शित करता है। सच है, शुष्कस्तनी नारी को कञ्चुकी की क्या ज़रूरत ? इसीसे तो वह कञ्चुकी बनानेवाले दरजी को निन्दा करती है।

(१५)

अज्ञातपाण्डित्यरहस्यमुद्रा ये काव्यमार्गे दधतेऽभिमानम् ।

ते गारुडीयाननधीत्य मन्त्रान् हालाहलास्वादनमारभन्ते ॥

पाण्डित्य के रहस्य की जो गुप्त बातें हैं उनमें कोरे होकर भी जो लोग काव्य के विषय में विज्ञता का घमण्ड करते हैं, वे गोया गारुडीय मन्त्रों का एक अक्षर न जान कर हलाहल का प्याला मुँह में लगाते हैं। ऐसों को भी भला कहीं इस काम मे सफलता हो सकती है ?

(१६)

तान्यर्थरत्नानि न सन्ति येषां सुवर्णसङ्घेन च ये न पूर्णाः

ते रीतिमात्रेण दरिद्रकल्पा यान्तीश्वरत्वं हि कथं कवीनाम् ॥

जिनके पास न अर्थ-रत्न ही हैं और न सुवर्ण का समूह ही है वे बेचारे महादरिद्री जीव (पद्यरचना की) रीति मात्र का अवलम्ब करके कवीश्वर की पदवी को भला कैसे पहुँच सकते हैं ?

(१७)

आघ्रातं प्रतिचुम्बितं प्रतिमुहुर्लीढं च यच्चर्वितं

क्षिप्तं वा यदि नीरसेन कुपितेनात्र व्यथां मा कृथाः ।

हे माणिक्य ! तवैव तच्च कुशलं यद्वानरेणामुना-

ऽप्यन्तस्तत्त्वनिरूपणव्यसनिना चूर्णीकृतं नाश्मना ॥

हे (काव्यरुपी) माणिक्य ! इस कुपित (दुर्जनरुपी) वन्दर ने तुझे बार बार सूँघा, बार बार तेरा चुम्बन किया, बार बार तुझे चाटा, बार बार तुझे मुँह में डाला, यही नही किन्तु इस नीरस ने तेरी योग्यता को न समझ कर तुझे दूर फेंक तक दिया। इसके लिए तू ज़रा भी खेद मत कर। तू अपने को भाग्यशाली समझ, जो इस वात के देखने के लिए कि तेरे भीतर क्या है, इसने पत्थर से तुझे तोड़कर चूर चूर नही कर डाला !

(१८)

काव्यामृतं दुर्जनराहुनीतं प्राप्यं भवेन्नो सुमनोजनस्य ।

सच्चक्रमव्याजविराजमान-तैक्ष्ण्य-प्रकर्षं यदि नाम न स्यात् ॥

यदि विष्णु के चक्र के समान, सज्जनों के चक्र (समूह) की धारा खूब तेज़ न होती, तो दुर्जनरूपी-राहु काव्यरूपी-अमृत को उडा ही ले जाता ; फिर वह काव्यलोलुप सुजनरुपी देवताओं को हरगिज़ न मिलता। अर्थात् यदि सुकवियों के काव्य के विषय में विकत्थना करनेवालों को सुजन अपनी तीक्ष्ण आलोचना से चुप न कर देते तो ये लोग सत्कविता को एक दम ही रसातल को पहुँचा देते।

(१९)

व्यालाश्च राहुश्च सुधाप्रसादाज्जिह्वाशिरोनिग्रहमुग्रमापुः ।

इतीव भीताः पिशुना भवन्ति पराङ्मुखाः काव्यरसामृतेषु ॥

सुधापान करने की इच्छा रखनेवाले राहु और सर्पों को बड़ा ही कठोर दण्ड मिला—राहु का तो सिर धड़ से ही उड़ गया और सर्पों की जिह्वा के दो टुकड़े हो गये। मालूम होता है, इन लोगों की ऐसी दुर्दशा देख कर ही परोत्कर्षा-सहिष्णु दुर्जन, मारे डर के, काव्यरसरूपी अमृत की तरफ़ अपना मुँह तक नही ले जाते—हमेशा उससे दूर भगते हैं।

(२०)

सदैव सत्सङ्गमसम्मुखोऽपि खलः स्वचर्यां न जहाति जातु।
कृत्वाऽपि सूर्याश्रयणं प्रयत्नाद्राहुर्गतः किं विबुधत्वयोगम् ॥

कार्यवशात् सत्समागम करके भी, दुर्जन दौर्जन्य नहीं छोड़ता। बड़ी बड़ी मुशकिलों से सूर्य का आश्रय करके भी राहु क्या विबुध (देवता, पण्डित) होने की योग्यता को पहुँचा?

(२१)

भवध्यजम्बालगवेषणाय कृतोद्यमानां खलसैरिभाणाम्।
कवीन्द्रवाङ्निर्जरनिर्झरिण्यां सजायते व्यर्थमनोरथत्वम् ॥

खलों को आप भैंसे का अवतार समझिए। भैंसों को महा अपावन कीचड़ बहुत पसन्द होता है। वे हमेशा उसी की तलाश में रहते हैं। परन्तु सुकवियों की वाणीरूपी सुर-सरिता में जब वे घुसते हैं तब उन बेचारों का प्रयत्न बेतरह निष्फल जाता है। भला गङ्गा में कीचड़ कहाँ?

(२२)

दृढप्ररूढा शतपत्रगेनेः कियत्यहो साधुजनेऽनुकम्पा।
योऽद्यापि विद्यानवपक्षसङ्गं खलप्लवङ्गस्य न निर्मिमीते ॥

ब्रह्मा ने सज्जनों पर एक बहुत ही बड़ा उपकार किया है। उसकी इस चिरप्ररूढ़ कृपा का विचार करके आश्चर्य होता है। वह कृपा यह है कि इन खलरूपी बन्दरों को, सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक उसने विद्यारूपी पक्ष (पंख) नहीं दिये। यदि कहीं इनको वह विद्यापक्ष दे देता तो सज्जनों का संसार में रहना कठिन हो जाता। बन्दर यदि उड़ने लगें तो बड़ी बड़ी बस्तियों के भी उजड़ जाने में देर न लगे।

(२३)

नैव व्याकरणज्ञमेव पितरं न भ्रातरं तार्किकं

मीमांसानिपुणं नपुंसकमिति ज्ञात्वा निरस्तादरा।

दूरात्सङ्कुचितेव गच्छति पुनश्चाण्डालवच्छान्दसं

काव्यालङ्करणज्ञमेव कविताकान्ता वृणीते स्वयम्॥

कवितारूपिणी कान्ता वैयाकरण को पिता, नैयायिक को भाई और मीमांसक को नपुंसक समझ कर उनके पास नहीं जाती—उनके विषय में प्रेम-सम्भूत आदर नहीं प्रकट करती। रहे वैदिक लोग, सो उनको तो वह चाण्डाल सा समझ उन्हें छूना तक पाप समझती है। अतएव उन्हें देख संकुचित होकर वह दूर निकल जाती है। परन्तु काव्यालङ्कारों के ज्ञाता, सहृदय सज्जनों को पाकर वह ख़ुद ही उनके कण्ठ में माला डाल कर उनकी हो जाती है।

(२४)

बिना न साहित्यविदा परत्र गुणः कथञ्चित् प्रथते कवीनाम्।

आलम्बते तत्क्षणमम्भसीव विस्तारमन्यत्र न तैलबिन्दुः॥

साहित्यशास्त्र का ज्ञाता ही कवियों के गुणों को अच्छी तरह जान सकता है। साहित्य में जो बिलकुल ही शून्य है वह

कविता का मर्म क्या जाने ? तेल की बूँद पानी ही में पडने से चारों तरफ फैलती है, अन्यत्र नहीं। ज़मीन पर आप चाहे तेल के कुप्पे ढुलकाया कीजिए, पर वह बात वहाँ थोडे ही देखने को मिलेगी।

(२५)

अयं मे वाग्गुम्फो विशदपदवैदग्ध्यमधुरः
स्फुरद्बन्धो वन्ध्यः पशुहृदि कृतार्थः कविहृदि।
कटाक्षो वामाक्ष्या दरदलितनेत्रान्तकलित
कुमारे निःसारः स तु किमपि यूनः सुखयति॥

अच्छे अच्छे पदों के रचना-चातुर्य से मधुर और मनोहर मेरा काव्य-प्रबन्ध, अरसिक-पशुओं के हृदय में कुछ भी असर नहीं पैदा कर सकता, परन्तु सहृदय कवियों के हृदय में पहुँच कर वह कृतार्थ हो जाता है। तरुणी नारियों के नेत्रप्रान्त से फेंके गये कटाक्ष अज्ञानी बालकों पर निष्फल जाते हैं पर वही युवकजनों को आनन्ददायक होते हैं।

(२६)

पदव्यक्तिव्यक्तीकृतसहृदयानन्दसरणौ
कवीनां काव्येन स्फुरति बुधमात्रस्य धिषणा।
नवक्रीडावेशव्यसनपिशुनो यः कुलवधू-
कटाक्षाणां पन्थाः स खलु गणिकानामविषयः॥

कवियों के काव्य के पदों को, किंवा शब्दों को, सुनने के साथ ही सहृदय लोगों के हृदय में उत्पन्न होनेवाले आनन्द के मर्म को सिर्फ ज्ञाता ही जान सकते हैं, और नहीं। नवीन-

समागम के योग से उत्पन्न हुए, कुल-कामिनियों के रसिकत्व-सूचक कटाक्ष, बेचारी वेश्याओं में भला कहाँ ?

(२७)

धन्यास्ते कवयो यदीयरसना रूक्षाध्वसञ्चारिणी
धावन्तीव सरस्वती द्रुतपदन्यासेन निष्क्रामति ।
अस्माकं रसपिच्छिले पथि गिरां देवी नवीनोदय-
-त्पीनोत्तुङ्गपयोधरेव युवतिर्मान्थर्यमालम्बते ॥

उन कवियों को धन्य कहना चाहिए जिनकी जिह्वा-रूप सूखी साखी सड़क पर जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाती हुई सरस्वती दौड़ती चली जाती है। परन्तु हमारी स्थिति वैसी नहीं। हमारी जिह्वारूपी सड़क पर रस बह रहा है। इससे फिसल पड़ने का डर है। अतएव नवीन, पीन और उत्तुङ्ग पयोधरवाली युवती की तरह, सरस्वती देवी उस पर धीरे धीरे चलती है। वह डरती है कि कहीं फिसल कर गिर न पड़े, जो बोझ से, शरीर के भारी होने के कारण, उसका हाथ पैर टूट जाय।

(२८)

लभ्यः स कुत्र सुजनः स्वकृतीः प्रदर्श्य
भ्रूकन्दली-युगलमाकलयन्ति यस्य ।
नेत्रोत्पलोपरि परिस्फुरदुत्तमाङ्ग—
भृङ्गावलिद्वितयविभ्रमभृत्कवीन्द्राः ॥

कवियों को ऐसा सज्जन भला कहाँ मिल सकता है जिसके सामने अपनी कविता रखकर उसके नेत्ररूपी कमलों के ऊपर चञ्चलभृङ्गावलीयुग्म के विभ्रमरूपी विलासों को धारण करने वाले भ्रूयुगल-कन्द, उन्हें देखने को मिलें ? सचमुच ही ऐसा

सज्जन मिलना मुश्किल है। और मिल जाय तो कवियों का अहोभाग्य समझना चाहिए। बहुत कम लोग ऐसे हैं जो सत्कवियों की भी कविता सुनकर खुश होते हैं।

(२६)

दिव्ये वाक्प्रसरक्रमे सुकवितः प्रत्यक्षवाचस्पतेः
श्रोतृस्तोतृकथासु कः खलु पटुः स्याच्चर्मचक्षुर्जनः।
लभ्यः शेषफणी कुतोऽत्र स तु यश्चक्षुः सहस्रद्वये
नाकर्ण्यैनमथ स्तुतौ वितनुयाज्जिह्वासहस्रद्वयीम्॥

वाचस्पति के प्रत्यक्ष अवतार, सुकवि, की दिव्य कविता सुन कर, कौन चर्मचक्षुधारीसाधारण मनुष्य उसको यथेष्ट प्रशंसा कर सकता है? एक मात्र शेष ही ऐसा है जो यह काम करने में समर्थ है। वही ऐसे कवि की कविता को दो हज़ार आँखों से सुनकर (सर्प के कान नहीं होते, वह आँखों ही से सुनता है) उतनी ही जिह्वाओं से उसकी स्तुति कर सकता है। परन्तु, अफसोस, शेष पृथ्वी पर नहीं। अतएव ऐसी दिव्य कविता अप्रशंसित ही रह जायगी।

(३०)

मनस्विनीनामिव साचि वीक्षितं स्तनन्धयानामिव मुग्धजल्पितम्।
अवश्यमासां मधुसूक्तिवीरुधां मनीषिणां मानसमार्द्रयिष्यति॥

मानिनी मुग्धाओं के कुटिल कटाक्षों की तरह अथवा बालकों के तोतले वचनों की तरह, इन सुभाषित रूपिणी लताओं का मधुर मधु (हमें विश्वास है) सहृदय सज्जनों के हृदयों को ज़रूर आर्द्र कर देगा।

३—कुकवि-प्रकरण

(१)

गणयन्ति नापशब्दं न वृत्तभङ्गं क्षयं न चार्थस्य ।

रसिकत्वेनाकुलिता वेश्यापतयः कुकवयश्च ॥

वेश्यागामी पुरुषों और कुकवियों में अद्भुत समानता होती है। वे दोनों ही रसिकता के नशे से व्याकुल रहते हैं—इतने व्याकुल कि उनके होशो-हवास कभी ठिकाने नहीं रहते। वेश्यागामी मनुष्य अपशब्दों (गालियों) को कुछ समझता ही नहीं, वृत्तभङ्ग (शील-संहार) की परवा ही नही करता, और अर्थक्षय (धननाश) से होनेवाली अपनी हानि की ओर ध्यान ही नहीं देता। यही हाल कुकवि का भी है। न वह अपशब्दों की परवा करता है, न वृत्तभङ्ग ही (छन्दो-भङ्ग) हो से बचने की चेष्टा करता है और न अर्थक्षय की ओर ही दृक्पात करता है। क्यों, समता है न ?

(२)

हठादाकृष्टानां कतिपयपदानां रचयिता

जनः स्पर्धालुश्चेदहह कविना वश्यवचसा ।

भवेदद्य श्वो वा किमिह बहुना पापिनि कलौ

घटानां निर्मातुस्त्रिभुवनविधातुश्च कलहः ॥

बड़े-बड़े विश्व-विश्रुत कवियो की नक़ल उतारते—उनकी बराबरी करने की चेष्टा मे रत होते—कुछ कुकवियों को देख कर एक काव्य-रसिक कहता है—इधर उधर से कुछ शब्दों को जोर-बटोर कर, हठपूर्वक, दस-पांच पंक्तियां लिख देनेवाले

मनुष्य यदि सिद्ध सरस्वतीक कवियों की बराबरी करने की तैयारी करेंगे, तो हम यही समझेंगे कि आज कल में, कभी न कभी, मिट्टी के घड़े बनानेवाला कुम्हार भी त्रिभुवन की रचना करनेवाले ब्रह्मदेव के सामने खम ठोंक कर उससे भी मल्लयुद्ध करने को तैयार हो जायगा। क्योंकि इस पापी कलिकाल में सभी कुछ सभव है। अतएव क्या आश्चर्य जो कुम्हार भी ब्रह्मा बन जाना चाहे!

(३)

स्वाधीनो रसनाञ्चलः परिचिताः शब्दाः कियन्तः क्वचित्
क्षोणीन्द्रो न नियामकः परिषदः शान्ता स्वतन्त्रं जगत्।
तद् ब्रूयं कवयो वय वयमिति प्रस्तावना हुँकृति—
स्वच्छन्दं प्रतिसद्म गर्जत वयं मौनव्रतालम्बिन॥

किसी की जिह्वा कीलित तो कर ही नही दी गई—किसी के मुँह में ताला तो लगा ही नही दिया गया, कुछ इने गिने शब्दों से परिचय है ही, राजा ने कोई क़ानून तो ऐसा बना ही नहीं दिया कि कुकवि या अकवि कविता न किया करें, जिन सभाओं या संस्थाओं को ऐसे मामलों में दंश देना चाहिए वे सब की सब शांत हैं ही। जहाँ तक अपने आप से सबध है जगत् भी स्वतत्र ही है। फिर, डर किसका? अतएव आप लोग अब निःशंक, घर घर जाकर, हुंकार करते हुए गरजते फिरें कि—कवि हैं तो हम, कविवर हैं तो हम, महाकवि हैं तो हम, और कोई नहीं! रह गया मैं, सो हे कवि-चक्रचूडा-मणे! मैंने तो आज से चुप रहने ही का व्रत धारण कर लिया। आप ख़ूब कविता कीजिए, मैं न बोलूँगा।

—

४—सन्मित्र-प्रकरण

(१)

कराविव शरीरस्य नेत्रयोरिव पक्ष्मणी ।
अविचार्य प्रियं कुर्यात्तन्मित्रं मित्रमुच्यते ॥

मित्र किसे कहते हैं ? मित्र उसे कहते हैं जो विना ज़रा भी सोच विचार किये इस तरह हित करने के लिए तैयार रहे जिस तरह कि हाथ सारे शरीर का और वरोनियाँ आँखों का हित साधन करने के लिए तत्पर रहती हैं ।

(२)

व्याधितस्यार्थहीनस्य देशान्तरगतस्य च ।
नरस्य शोकदग्धस्य सुहृद्दर्शनमौषधम् ॥

जो आधि-व्याधियों से पीडित है, जो क्षीण-सम्पत्ति है, जो विदेश में पड़ा हुआ है, जो शोकाग्नि से जल रहा है—ऐसे मनुष्य के लिए अपने मित्र का दर्शन औषधि का काम करता है।

(३)

स्वाभाविकं तु यन्मित्रं भाग्येनैवाभिजायते ।
तदकृत्रिमसौहार्दमापत्स्वपि न मुञ्चति ॥

स्वाभाविक मित्र बड़े भाग्य से मिलता है। सच्चा मित्र वह है जो विपत्ति में भी अपने स्नेही का साथ न छोड़े।

(४)

उदयन्नेव सविता पद्मेष्वर्पयति श्रियम् ।
विभावयन्समृद्धीनां फलं सुहृदनुग्रहम् ॥

समृद्धिशाली अर्थात् सम्पत्तिमान् होने का फल अपने मित्र पर अनुग्रह करना है, यही समझ कर सूर्य उदय होते ही अपने प्यारे कमलों को प्रफुल्ल करता है—उन्हें श्री (शोभा, लक्ष्मी) देकर आनन्दित करता है।

(५)

मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः

पात्रं यत्सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तद्दुर्लभम्।

ये चान्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुला-

स्ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत्॥

इस संसार में ऐसे मित्र का मिलना बहुत दुर्लभ है जो अपने स्नेही के सुख-दुःख में शामिल रहे, जिसे देखते ही नेत्रों को अपूर्व आनन्द प्राप्त हो और जो सदा अपने आन्तरिक प्रेम को प्रवर्द्धित करता रहे। केवल मतलब साधने के इरादे से—एक-मात्र रुपया पैसा झटकने की इच्छा से—अपने अच्छे दिनों में जो मित्र बन जाते हैं वे तो गली गली मारे मारे फिरते हैं। उनकी पहचान उस समय होती है जब अपने ऊपर कोई विपत्ति आती है। विपत्ति के दिनों में वे सब छोड़ भगते हैं। विपत्ति ही ऐसे मित्रों की परीक्षा की कसौटी है। हिन्दी में भी किसी ने कहा है:—
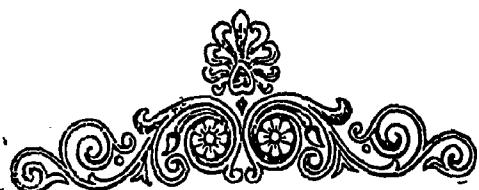
विपति बराबर सुख नहीं, जो थोड़े दिन होय।

इष्ट मित्र बन्धू जिते, जानि परें सब कोय॥

(६)

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ता पुरा तेऽखिलाः

क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः।

गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद्दृष्ट्वा तु मित्रापदं
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥

दूध और पानी में अलौकिक मैत्री है। पानी के अकृत्रिम स्नेह को देखकर दूध ने उसे अपने सारे गुण—शुभ्रता, मिष्टता, आदि दे दिये। पानी इस उपकार को भूला नहीं। इसस जब दूध आग पर चढ़ाया गया और वह तपने लगा, तब पानी से नहीं देखा गया। वह दूध से पहले ही आग में जल मरा। उसने कहा, अपने जीतेजी मैं अपने सच्चे सुहृद् दूध को न जलने दूँगा। अतएव दूध से भरे हुए पात्र में आँच लगते ही पानी जलने लगा। यह दशा देख दूध घबरा उठा। वह अपने अनन्य मित्र पानी को जलने से बचाने के लिए आग को बिलकुल ही बुझा देने अथवा ख़ुद ही जल मरने की इच्छा से दौड़ा। दूध में उफान आगया। उफल कर वह उस पात्र के मुँह से नीचे आग पर गिरने ही को था कि फिर भी पानी ने उसकी रक्षा की। उसे आग में गिरने से बचा लिया। पानी का ज़रा सा छींटा पाते ही दूध फिर शान्त हो गया। संसार में सज्जनों की मैत्री भी ऐसी ही होती है।

५—नीति-प्रकरण

(१)

त्यजन्ति शूर्पवद्दोषान् गुणान् गृह्णन्ति साधवः।

दोषग्राही गुणत्यागी चालनीरिव दुर्जनः ॥

भले आदमी सूप के समान होते हैं। वे दोषों को छोड़ देते हैं और गुणों को ले लेते हैं। परन्तु बुरे आदमी छालनी (चलनी) के समान होते हैं। क्योंकि वे गुणों को छोड़कर दोषों ही का ग्रहण करते हैं।

(२)

येनाञ्चलेन सरसीरुहलोचनाया—

त्रातः प्रभूतपवनादुदये प्रदीपः।

तेनैव सोऽस्तसमयेऽस्तमयं विनीतः

क्रुद्धे विधौ भजति मित्रममित्रभावम् ॥२॥

कमलनयनी के जिस अञ्चल ने, उदय के समय, प्रचण्ड वायु से दीपक की पहले रक्षा की, उसी अञ्चल ने, पीछे से, उसे अस्त को पहुँचाया! सच है, दैव का कोप होने से मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

(३)

व्यालाश्रितापि विफलापि सकण्टकापि

वक्रापि पंकिलभवापि दुरासदापि।

गन्धेन बन्धुरसि केतकि! सर्वजन्तो-

-रेको गुणः खलु निहन्ति समस्तदोषान् ॥

तुझ पर सर्पों का वास है; तुझ में फल भी नहीं होते; तू कण्टकों से आच्छादित भी है; तू वक्र भी है, उत्पत्ति भी तेरी कीचड़ से है—तथापि, हे केतकी ! अपनी अनुपम सुगन्ध से तू सबकी प्यारी हो रही है। सच है; यदि एक भी अलौकिक गुण हुआ तो उससे सारे दोष ढक जाते हैं।

(४)

सच्छिद्रनिकटे वासः कर्तव्यो न कदाचन ।
घटो पिबति पानीयं झल्लरी तेन ताड्यते ॥

सच्छिद्र (सदोष) के पास कभी न रहना चाहिए। देखिए, पानी पीती है छेददार घड़ी रूपी कटौरी; और मार पड़ती है पास रहनेवाले घड़ियाल के ऊपर !

(५)

कमलिनि ! मलिनी करोसि चेतः
किमिति बकैरवहेलिताऽनभिज्ञैः ?
परिणतमकरन्दमार्मिकास्ते
जगति भवन्तु चिरायुषो मिलिन्दाः ॥

हे कमलिनी, इन अनाड़ी बकों की की हुई अवहेलना से तुझे अपना मन भला क्यों मलिन करना चाहिए ? जगत् में तेरे परिपक्व मकरन्द के मार्मिक ये हज़ारों मधुप जीते रहें ! मार्मिक मिलिन्दों के रहते तुझे बकों की क्या परवा ?

(६)

अनामा स्वर्णमाधत्ते न कनिष्ठा न मध्यमा ।
निजनामप्रसिद्धानां भूषणै किं प्रयोजनम् ॥

अनामा ही सोने की अँगूठी पहनती है, न कनिष्ठा ही पहनती है और न मध्यमा ही। क्योंकि जिसका नाम नहीं है, अर्थात् जिसका नाम कोई नहीं जानता, उसीको आभूषण पहन कर अपनी प्रसिद्धि करने की ज़रूरत पड़ती है । जो अपने नाम ही से प्रसिद्ध हो रहा है, अर्थात् जिसका नाम सब कोई जानते हैं उसको आभूषणों से क्या मतलब? नाम मात्र से प्रसिद्ध होनेवालों के लिए एशियाटिक सोसा-यटी के मेम्बर, या अमुक कालेज के अध्यापक, या अमुक सभा के मन्त्री, या अमुक अखबार के एडिटर, इत्यादि लिखने की ज़रूरत नहीं।

(७)

धूर्तेषु मायाविषु दुर्जनेषु स्वार्थैकनिष्ठेषु विमानितेषु ।
वर्तेत यः साधुतया स लोके प्रतार्यते मुग्धमतिर्न केन ॥

जो धूर्त है, जो मायावी है, जो दुर्जन है, जो स्वार्थ-रत है, जो विमानित है, उसके साथ जो आदमी भलमसी का व्यवहार करता है उस मूढ की प्रतारणा इस संसार में कौन नहीं करता? कौन नहीं उसे धोखा देता? कहाँ नहीं उसका छल होता? धूर्तों से सद्व्यवहार! कभी नहीं। उनके साथ तो "शाठ्यं सदा दुर्जने" का व्यवहार ही मुनासिब है ।

(८)

स्वार्थं धनानि धनिकात्प्रति गृह्णतो य-
-दास्यं भजेन्मलिनतां किमिदं विचित्रम् ।
गृह्णन्परार्थमपि वारिनिधेः पयोऽपि
मेघोऽयमेति सकलोऽपि च कालिमानम् ॥ ४॥

अपने लिए धनवानों से धन ग्रहण करने पर यदि किसी का मुख मलिन हो जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। देखिए, जिस समुद्र में रत्नों का अन्त नहीं उससे, और वस्तु जाने दीजिए, केवल जल, सो भी अपने लिए नहीं, जगत् के लिए लेने वाले मेघों का केवल मुख ही नहीं, किन्तु सारा शरीर मलिन क्या, कोयले के समान काला हो जाता है!

(९)

हालाहलं नैव विषं, विष रमा
जनाः परं व्यत्ययमत्र मन्वते।
निपीय जागर्ति सुखेन तं शिवः
स्पृशन्निमां मुह्यति निद्रया हरिः॥

जो लोग हालाहल को विष कहते हैं वे भूलते हैं। हालाहल कदापि विष नहीं; विष यह लक्ष्मी है! देखिए, हालाहल को पान करके भी शङ्कर जीते जागते हैं; परन्तु लक्ष्मी का केवल स्पर्श ही करके विष्णु (क्षीरसागर में) मोह-निद्रा को प्राप्त हो जाते हैं।

(१०)

इदमेव हि पाण्डित्यमियमेव विदग्धता।
अयमेव परो धर्मो यदायान्नाधिको व्ययः॥

जो प्राप्ति से अधिक व्यय नहीं होने देता वही पण्डित है; वही चतुर है; और वही धर्मात्मा भी है।

(११)

इह तुरगशतैः प्रयान्तु मूर्खा
धनरहिता विबुधाः प्रयान्तु पद्भ्याम्।

गिरिशिखरगतापि काकपङ्क्तिः
पुलिनगतैर्न समत्वमेति हंसैः ॥

मूर्ख चाहे सौ घोड़े की गाड़ी पर निकले, और निर्धन विद्वान् पैदल ही क्यों न घूमते रहें। इससे मूर्ख क्या विद्वानों की बराबरी कर सकते हैं? हिमालय की चोटी पर बैठे हुए कौवे, नीचे भागीरथी के रेत पर फिरनेवाले हंसों की समता नहीं कर सकते!

(१२)

को न याति वशं लोके मुखे पिण्डेन पूरिते।
मृदङ्गो मुखलेपेन करोति मधुरध्वनिम् ॥

मुँह मीठा करने से (खिलाने अथवा देने से अभिप्राय है) इस जगत् में, कौन नहीं वशीभूत हो जाता? देखिए, निर्जीव मृदङ्ग के मुख पर लेप करने से वह भी मधुर ध्वनि करने लगता है।

(१३)

विदुषां वदनाद्वाचः सहसा यान्ति नो वहिः।
याताश्चेन्न पराञ्चन्ति द्विरदानां रदा इव ॥

विद्वानों के मुख से कोई बात सहसा बाहर नहीं निकलती, और यदि निकल गई तो हाथी के दाँतों के समान फिर वह पीछे भी नहीं जाती। अर्थात् विद्वान् जो बात एक बार कह देते हैं उसे वे पूरा ही करके छोड़ते हैं।

(१४)

यस्मै किञ्चिन्न देयं स्यात्तस्मै देयं किमुत्तरम्।
अद्य सायं पुनः प्रातः सायं प्रातः पुनः पुनः ॥

जिसको कुछ न देना हो उसको कब उत्तर देना चाहिए? आज; शाम को; सवेरे; फिर शाम को; फिर सवेरे—यही उत्तर देना चाहिए।

(१५)

मूर्खस्य पञ्च चिह्नानि गर्वी दुर्वचनी तथा।
हठी चाप्रियवादी च परोक्तं नैव मन्यते॥

मूर्ख के पाँच चिह्न हैं। यथा—घमण्ड करना; दुर्वचन कहना; हठ करना; कठोरवाणी बोलना और दूसरे का कहना न मानना।

(१६)

खलो मृगयते दोषान् गुणपूर्णेऽपि वस्तुनि।
वने पुष्पफलाकीर्णे पुरीषमिव शूकरः॥

गुणों से भरी हुई चीज़ में भी दोष ढूँढ़ते फिरना खल आदमी का स्वभाव ही होता है। फूलों और फलों से परिपूर्ण वन मे भी शूकरराज गन्दगी ही ढूँढ़ा करते हैं।

(१७)

गच्छ शूकर भद्रं ते वद सिंहो मया जितः।
पण्डिता एव जानन्ति सिंहशूकरयोर्बलम्॥

शूकरजी, तशरीफ़ ले जाइए और मज़े उड़ाइए। अपने भाई-बन्दों से कह दीजिएगा कि मैंने शेर को पछाड़ दिया। आपके और शेर के पराक्रम को समझदार जानते ही हैं।

६—शृङ्गारोक्ति-प्रकरण

(१)

एक पण्डितजी अपनी पण्डितानी के साथ जल-विहार कर रहे थे। उसी समय उन्होंने यह कविता की—

> नेयं ते मुखमण्डलप्रतिकृतिश्छाया न हारोद्भवा
>
> वक्षोजौ प्रतिबिम्बितौ न सलिले जाने हि तथ्य प्रिये।
>
> अप्राप्याननसौभगं तव शशी मुक्ताञ्चितैर्दामभिः,
>
> कण्ठे हेमघटद्वय परि दधत्पानीयमध्यं गतः॥

जल में यह जो मुख का सा आकार देख पड़ता है वह तेरे मुख की प्रतिभा नही है, यह जो हार सा लटकता हुआ देख पड़ता है वह तेरे हार की छाया नही है; और यह जो स्तनद्वय सा जान पडता है यह भी तेरे स्तनों का प्रतिबिम्ब नहीं है। अच्छा है क्या? कहिए तो सही। मैंने ठीक ठीक जान लिया है कि यह सब क्या है। सुन, तेरे मुख की बराबरी सहन करने मे असमर्थ हो कर, मोतियों की लड़ी से बँधे हुए दो घड़ों को अपने गले से लटका कर, चन्द्रमा पानी में डूब मरा है? और क्या? ऐसी अवस्था में मुख दिखलाने की अपेक्षा डूब मरना ही अच्छा होता है!

(२)

> सत्यमेव गदितं त्वया विभो,
>
> जीव एक इति यत्पुरावयो:।
>
> अन्यदारनिहिता नखव्रणा-
>
> -स्तावके वपुषि पीडयन्ति माम्॥

हे प्रिय ! तुमने पहले जो यह कहा था कि तुम्हारा और मेरा जीव एक ही है सो बहुत ठीक-कहा था। उसका प्रमाण आज मिल गया। देखिए, अन्य स्त्री ने यद्यपि तुम्हारे शरीर पर नखों के निशान लगाये हैं, किंवा घाव किये हैं, तथापि पीड़ा वे मुझे पहुँचा रहे हैं ! यदि तुम्हारा और मेरा जीव एक न होता तो यह बात कभी न होती !

(३)

एक कुलकामिनी अपने पति के पास अपनी सखी के द्वार सन्देश भेजती है—

वाच्यं तस्मै सहचरि ! भवद्भूरिविश्लेषवह्नौ
स्नेहैरिद्धे मम वपुरिदं कामहोता जुहोति ।
प्राणानस्मै तदहमुचितां दक्षिणां दातुमीहे
तत्रादेशो भवतु भवतां यत्त्वमेषामधीशः ॥

हे सखि ! उनसे कहना कि स्नेह (तेल और घी को भी स्नेह कहते हैं) से और भी अधिक प्रज्वलित हुए आपके वियोग रूपी अग्नि में, कामरूपी होता (यष्टा, पुरोहित), मेरे इस शरीर की आहुति दे रहा है। अतएव हवन समाप्त होने के अनन्तर, समय के अनुकूल, उसे मैं अपने प्राणरूपी दक्षिणा देना चाहती हूँ। परन्तु मेरे प्राणों पर आपका स्वामित्व है, मेरा नहीं ; इसलिए उन्हें दे डालने के लिए मैं आपकी आज्ञा चाहती हूँ।

(४)

मानं मानिनि ! सञ्जहीहि विदुषि ! ब्रूयाः क एष क्रमो
रद्रागः श्रुतिसेविनोर्नयनयोरेतादृशो दृश्यते ।

किञ्चान्यत्कुचशम्भुसेविनि चिरं बन्धः कथं कञ्चुके
काञ्चीसङ्गतिसङ्गतापि लभते नीवी न, मोक्षं कुतः ॥

हे मानिनि! मान छोड दे। हे विदुषि! यह उलटा क्रम कैसा? ये उलटी बातें कैसी? (मूर्ख यदि कुछ विपरीत करे तो आश्चर्य नहीं, परन्तु तू तो विदुषी है—पढी लिखी है—तू ऐसा क्यों करती है?) श्रुति (कानों तथा वेदों) की सेवा करनेवाले नयनों में यह राग (लालिमा और सांसारिक अनुराग) क्यों दिखाई दे रहा है? श्रुतिसेवकों को भी राग! स्तनरूपी शम्भु का चिरकाल सेवक यह कञ्चुक (कञ्चुकी) बँधा हुआ क्यों है? सदाशिव के भक्त को भी बन्धन! और काञ्ची (तागडी तथा सप्तपुरियों में से एक पवित्र पुरी) का समागम करनेवाली, अर्थात् उसके साथ रहनेवाली, नीवी (वस्त्र-ग्रन्थि) की मुक्ति क्यों नहीं? काञ्चीवास करके भी मोक्ष की अप्राप्ति!!!

(५)

लोके कलङ्कमपहातुमयं मृगाङ्को
जातो मुखं तव पुनस्तिलकच्छलेन।
तत्रापि कल्पयसि तन्वि कलङ्करेखां
नार्यः समाश्रितजनं हि कलङ्कयन्ति ॥

अपने कलङ्क को धोने के लिए यह चन्द्रमा, इस लोक में आकर, तेरा मुख हुआ। परन्तु, हे कृशाङ्गि! काला तिलक लगाकर उसमें, यहाँ भी, तू कलङ्क की रेखा उत्पन्न करती है? सच है, आश्रित मनुष्य को कलङ्क लगाये बिना स्त्रियाँ क्यों छोड़ने लगीं?

(६)

अनलस्तम्भनविद्यां सुभग भवान् नियतिमेव जानाति ।

मन्मथशराग्नितप्ते हृदये मे कथमन्यथा वससि ॥

हे सुभग, (जङ्गम बावा के चेलों के समान) आप आग का स्तम्भन (ठण्ढा) करने की विद्या ज़रूर जानते हैं। यदि न जानते होते तो मन्मथ के बाणों की आग से धधकते हुए मेरे हृदय में आप किस तरह रह सकते ?

(७)

कोषद्वन्द्वमियं दधाति नलिनी कादम्बचञ्चुक्षतं,

धत्ते चूतलता नवं किसलयं पुंस्कोकिलास्वादितम् ।

इत्याकर्ण्य मिथः सखीजनवचः सा दीर्घिकायास्तते

चैलान्तेन तिरोदधे स्तनतटं बिम्बाधरं पाणिना ॥

यह कमलिनी ऐसी दो कलिकाओं को धारण किये हुए है जिनपर हंस की चोंच का निशान है अथवा जिन पर हंस की चोंच ने घाव कर दिया है। और यह आम की लता ऐसे नवीन पल्लवों को धारण किये हुए है जिनका स्वाद पुरुष जाति के कोकिल ने लिया है। कुयें पर, सखियों की इस प्रकार, परस्पर बातें सुनकर उसने अपने स्तन-तटों को अञ्चल से और बिम्बाधर को हाथ से ढँक लिया।

(८)

चरखे को देख कर किसी कवि को एक विचित्र उक्ति सूझी। वह कहता है—

रे रे घरट्ट ! मा रोदीः कं कं न भ्रामयन्त्यमूः ।

कटाक्षवीक्षणादेव कराकृष्टस्य का कथा ? ॥

(८१)

रे चरखे ! क्यों रोता है ? मत रो। ये स्त्रियाँ अपने कटाक्ष ही से किस किस को चक्कर में नहीं डाल देती ? तुझे तो ये अपने हाथ से खींचती हैं, अतएव तू जो इनके चक्कर में आकर रोता फिरे तो क्या आश्चर्य ?

(६)

एक कवि कहता है—

स्वकीयं हृदयं भित्वा निर्गतौ यौ पयोधरौ।
हृदयस्यान्यदीयस्य भेदने का कृपा तयोः॥

जो अपने ही हृदय को फोड कर बाहर निकल आये हैं, उन पयोधरों को भला दूसरे का हृदय छेदने में क्यों दया आने लगी !

(१०)

दूसरा कवि और ही कुछ कहता है—

यथा यथा विशत्यस्या हृदय हृदयेश्वर ।
तथा तथा बहिर्यातौ शङ्के सकोचितौ कुचौ॥

मैं समझता हूँ कि इसके हृदय के भीतर जैसे जैसे इसका हृदयेश्वर—प्रियतम—प्रवेश करता जाता है तैसे ही तैसे हृदय में स्थान कम रह जाने के कारण, संकुचित होकर, इसके पयोधर बाहर निकलते आते हैं !!

(११)

तीसरा कवि एक तीसरा ही कारण बतलाता है। नायिका को सम्बोधन करके वह कहता है—

मद्वङ्गि, कठिनौ, तन्वि, पीनौ, सुमुखि, दुर्मुखौ।
अतएव बहिर्यातौ हृदयात्ते पयोधरौ।

तेरा अङ्ग कोमल है, ये कठोर हैं; तू कृशाङ्गी है, ये पुष्ट हैं; तू सुमुखी है, ये दुर्मुख (काले मुखवाले) हैं ; इसीलिए, अर्थात् तेरा और इनका मेल न मिलने के कारण, ये पयोधर तेरे हृदय से बाहर निकल आये हैं !!!

(१२)

अपूर्वो दृश्यते वह्निः कामिन्याः स्तनमण्डले ।
दूराद्दहति यो गात्रं गात्रलग्नस्तु शीतलः ॥

कामिनी के स्तन-मण्डल में विलक्षण प्रकार की आग देख पड़ती है । देखिए न, दूर से तो वह शरीर को जलाती है; परन्तु शरीर में लगने से उलटा उसे शीतल करती है ।

(१३)

आवृणोति यदि सा मृगीदृशी
स्वाञ्चलेन कुचकाञ्चनाचलम्।
भूय एव वहिरेति गौरवा-
-दुन्नतो न सहते तिरस्क्रियाम् ॥

यह मृगलोचनी अपने उरोजरूपो काञ्चन पर्वतों को यद्यपि अञ्चल से ढकती है; तथापि, गौरव के कारण, वे वार वार वाहर प्रकट होना चाहते हैं । जो स्वभाव ही से उन्नत है वह अपना तिरस्कार कदापि नहीं सहन कर सकता ।

(१४)

यथा यथास्याः कुचयो समुन्नति-
स्तथा तथा लोचनमेति वक्रताम् ।
अहो सहन्ते बत नो परोदयं
निसर्गतोन्तर्मलिना ह्यसाधवः ॥

जैसे जैसे इसके पयोधरों की उन्नति (वृद्धि, बढ़ती) होती है, वैसे वैसे इसकी आँखें टेढी होती जाती हैं। सच है, स्वभाव ही से मलिन अन्तःकरणवाले दुर्जन दूसरे की बढती नहीं सह सकते!

(१५)

एक स्त्री गेंद खेल रही थी। उस समय, उसकी वेणी में कमल का एक फूल गुँधा हुआ था। खेलने में, धक्का लगने से, उस फूल को भूमि पर गिरते देख एक कवि कहता है—

पयोधराकारधरो हि कन्दुकः
करेण रोषादभिहन्यते मुहुः।
इतीव नेत्राकृतिभीतमुत्पल
स्त्रियः प्रसादाय पपात पादयो.॥

गेंद ने पयोधरों का आकार धारण किया है, अर्थात् उनके आकार की चोरी की है, इसलिए यह सुलोचनी, क्रोध में आकर, उसे अपने हाथ से तड़ातड मार रही है। यह दशा देख, आँखों के आकार की चोरी करने के कारण भयभीत हुआ कमल-फूल इसके पैरों पर, मानो यह कहने के लिए गिर पड़ा कि मुझे क्षमा करना, कहीं मुझपर भी, इसी प्रकार अपना हाथ न साफ़ करने लगना!

(१६)

अहमिहैव वसन्नपि तावकस्त्वमपि तत्र वसन्नपि मामकः।
हृदयसङ्गम एव हि सङ्गमो न तनुसङ्गम एव सुसङ्गमः॥

हम यहाँ होकर भी आपके हैं, और आप वहाँ होकर भी हमारे हैं। हृदय का सङ्गम ही सच्चा सङ्गम है। शरीर का सङ्गम कोई सङ्गम नहीं।

७—प्रकीर्ण-प्रकरण

(१)

लज्जा कीर्तिर्जनकतनया शैवकोदण्डभगे

तिस्रः कन्या निरुपमतया भेजिरे रामचन्द्रम् ।

अन्त्याः पाणिग्रहणसमये ज्यायसी जातकोपा

भूपैः सार्द्धं खलु गतवती, मध्यमाऽधोदिगन्तान् ॥

जब रामचन्द्र ने शङ्कर का धनुष तोड़ा तब उनके निरुपम पराक्रम पर मुग्ध होकर (१) लज्जा (२) कीर्ति और (३) जानकी—ये तीनों बहनें उनके पास उपस्थित हुईं। परन्तु रामचन्द्र ने सबसे छोटी, अर्थात् जानकी ही, का स्वीकार किया। इससे, बड़ी बहन, लज्जा, को क्रोध आया और वह स्वयंवर में आये हुए राजाओं के साथ वहाँ से चली गई। मझली (कीर्ति) से भी छोटी का यह सौभाग्य न देखा गया। अतएव वह भी, नीचे पाताल और इधर उधर दिग्दिगन्त तक जहाँ उसे आश्रय मिला, चली गई।

(२)

दोषाकरः शिरसि तेऽस्ति गले द्विजिह्वः

पाषाणजा सहचरी पशुरान्तरङ्गः ।

दुःखं निवेदयति को मम दीनबन्धो !

त्वं चेत्त्रिलोचन ! निमीलितलोचनोऽसि ॥

एक कवि शङ्कर से कहता है—आप के शीश पर दोषाकर (दोषों की खानि तथा चन्द्रमा) है; गले में द्विजिह्व (चुगल-

खोर तथा सर्प) है, सहचरी आपकी पर्वतकन्या (अतएव कठोरहृदया) है, सेवक (नन्दी) आपका पशु है। इसलिए हे दीनवन्धो ! यदि आप भी आँखें वन्द करके (ध्यानस्थ हो) बैठ जायँगे, तो, कहिए, हमारा दुःख कौन जाकर आपसे कहेगा ?

(३)

ईशे पदप्रणयभाजि मुहूर्तमात्रं

प्राणप्रियेऽपि कुरु मानिनि ! मा प्रसादम्।

जानातु मत्प्रभुरसौ पदयोर्नताना-

-मस्मादृशामिव मनोरथभङ्गदुःखम् ॥

एक कवि पार्वती से कहता है —हे मानिनि ! तेरे प्राणप्रिय पति जव तुझे प्रसन्न करने के लिए तेरे पैरों पर अपना मस्तक रक्खें, तव ज़रा देर के लिए तू वैसा ही कोप धारण किये रह। ऐसा करने से हमारे प्रभु को यह तो विदित हो जायगा कि हमारे समान भक्त जनों का मनोरथ भङ्ग होने से कितना दुःख होता है।

(४)

अस्मान्विचित्रवपुषश्चिरपृष्ठलग्नान्

कस्माद्विमुञ्चसि विभो ! यदि मुञ्च, मुञ्च।

हा हन्त केकिवर ! हानिरियं तवैव

गोपालमौलिमुकुटे भविता स्थितिर्नः ॥

हे मोर महाराज ! आप हमको क्यों निकाले देते हैं ? हम आप ही के पङ्ख हैं। देखिए, हमारा रूप कितना चित्र विचित्र है फिर हम वहुत दिन से आपकी पीठ पर रहे हैं। इसलिए हमारा त्याग आपको उचित नहीं। परन्तु, यदि आप, किसी

तरह मानते ही नहीं, छोड़ने ही पर उद्यत हैं, तो ख़ैर छोड़ दीजिए; हम चले जायँगे। परन्तु आप सोच लीजिए; हमारा त्याग करने में आप ही की हानि है; हमारी नहीं। हम तो आप के यहाँ से चल कर श्रीकृष्ण के मुकुट पर जा बैठेंगे।

(५)

जलनिधौ जननं धवलं वपु-

-र्मुररिपोरपि पाणितले स्थितः।

इति समस्तगुणान्वित शङ्ख भोः

कुटिलता हृदये न निवारिता॥

जन्म जलनिधि में; शरीर गौर; निवास विष्णु के हाथ में; ऐसे ऐसे अद्भुत गुणों से युक्त होकर भी हे शङ्ख! अपने हृदय की कुटिलता तूने न छोड़ी!

(६)

पत्राणि जीर्णानि फलं विनष्टं

छाया गता पक्षिकुलैः प्रयातम्।

वसन्त! जानीहि तवाश्रयासौ

समुन्नतिं नैव जहाति वृक्षः॥

पत्ते पुराने हो गये; फल नहीं रहे; छाया भी चली गई; चिड़ियों ने भी छोड़ दिया। परन्तु हे वसन्त! याद रख, केवल तेरे ही आसरे यह वृक्ष अभी तक अपनी उन्नति (उच्चता, सदाशयता) को नहीं छोड़ता।

(७)

न सन्ध्यां सन्धत्ते नियमितनमाजं न कुरुते

न वा मौञ्जीबन्धं कलयति न वा सुन्नतविधिम्।

न रोज़ां जानीते व्रतमपि हरेर्नैव कुरुते
न काशी मक्का वा शिव शिव न हिन्दुर्न यवनः ॥

न सन्ध्या करते हैं ; न नमाज़ ही पढ़ते हैं, न यज्ञोपवीत से काम, न सुन्नत से ही ; न रोज़ा रखते हैं, न कोई व्रत ही करते हैं, न काशी को मानते हैं, न मक्का ही की हज करते हैं। क्या कहें, कुछ कहा नहीं जाता। शिव शिव, आजकल के लोग न हिन्दू में न मुसलमान में।

(८)

पिकं हि मूकीकुरु धूमयोने
भेक च सेकैर्मुखरी कुरुष्व ।
किन्तु त्वमिन्दोः प्रपिधाय बिम्ब
खद्योतमुद्द्योतयसीत्यसह्यम् ॥

धुँवे से उत्पन्न हुए हे काले मेघ, तू कोकिल को भले ही चुप कर दे, और अपने छींटों से मेढकों के मुँह को खोल कर उनसे खूब वाचालता करा—इसकी कुछ परवा नहीं। पर तू चन्द्रमा के बिम्ब को ढक कर, खद्योत के समान तुच्छ कीडे का प्रकाशन करता है—यह तेरा अविवेक सर्वथा असह्य है।

(९)

अधः पश्यसि किं वृद्ध ? तव किं पतितं भुवि ।
रे रे मूर्ख न जानासि गतं तारुण्य-मौक्तिकम् ॥

बाबा, तुम नीचे की ओर झुके हुए क्या देख रहे हो, क्या ज़मीन पर तुम्हारा कुछ गिरा पड़ा है ? अरे मूर्ख ! क्या तू नहीं जानता कि मेरा तारुण्यरूपी मोती खो गया है ? (उसे ही मैं ढूँढ़ रहा हूँ)

(१०)

माघ कविकृत सूर्योदय-वर्णन—

विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः

कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः ।

कृतचपलविहङ्गालापकोलाहलाभि—

र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः ॥

बहुत मोटी और लम्बी रस्सियों के समान किरणों से बाँध कर, सबेरे जगी हुई चञ्चल चिड़ियों के कोलाहल- रूप शब्द करते हुए, दिशारूपी स्त्रियाँ, एक बहुत बड़े घड़े के समान इस गरुवे सूर्य को, समुद्र से खींच कर, ऊपर निकाल रही हैं। कैसी उत्तम उत्प्रेक्षा है !

(११)

काचं मणिं काञ्चनमेकसूत्रे

मूढा निबध्नन्ति किमत्र चित्रम् ।

विशेषवित् पाणिनि रेकसूत्रे

श्वानं युवानं मघवानमाह ॥

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं जो मूर्ख लोग काच, सोना और मणि इन तीनों को एक ही साथ एक ही सूत्र में पिरो कर पहनते हैं। व्याकरण के आचार्य महाविद्वान् पाणिनि ने तो श्वन् (कुत्ता), युवन् (युवा) और मघवन् (इन्द्र) इन तीनों को एक ही सूत्र में रख दिया है ! अर्थात् इन तीनों शब्दों को, जो एक ही प्रकार के हैं, एक ही सूत्र में कहे हुए एक ही नियम के अधीन किया है ।

(१२)

एक कवि कहता है—

वाम प्रधान खलु योग्यताया
वासो विहीन विजहाति लक्ष्मी. ।
पीताम्बर वीक्ष्य ददौ तनूजां
दिगम्बर वीक्ष्य विष समुद्रः ॥

योग्यता के अनुसार वस्त्र पहनना ही उचित है, क्योंकि लक्ष्मी वस्त्रहीन पुरुप का आदर नहीं करती, वह उसे छोड़ कर चली जाती है। विष्णु के बहुमूल्य पीताम्बर को देख कर समुद्र ने अपनी कन्या दे दी, और शङ्कर की दिगम्बरता को देख कर उन्हें कालकूट विप दे दिया !

(१३)

दूसरा उत्तर देता है—

अक्षराणि परीक्ष्यन्तामम्बराडम्बरेण किम् ?
दिगम्बरो महादेवः सर्वज्ञः किं न जायते ?

अजी ! विद्वत्ता को देखिए, कपडे-लत्ते के आडम्बर से क्या लाभ ? दिगम्बर होने के कारण क्या शङ्कर को सर्वज्ञता कही चली गई ?

(१४)

कालिदास-कविता, नव वयो,
माहिप दधि मशर्करं पयः ।
शारदेन्दुवदना विलासिनी,
प्राप्यते सुकृतिनैव भूतले ॥

कालिदास की कविता, नई उम्र, भैंस का दही, चीनी डाला हुआ दूध, और शरत्काल के चन्द्रमा के समान मुखवाली कामिनी—ये सब ससार में पुण्यवान् पुरुष ही को प्राप्त होता है।

(१५)

आयुः प्रश्ने दीर्घमायुर्वाच्यं मौहूर्तिकैर्द्विजैः ।
जीवन्तो बहु मन्यन्ते मृताः पृच्छन्ति के पुनः

ज्योतिषियों से यदि कोई पूछें कि हमारी उम्र कितनी है; अर्थात् हम कितने दिन जीते रहेंगे, तो उनको कहना चाहिए कि आपकी बड़ी उम्र है; आप दीर्घायु हैं । यदि वे जीते रहेंगे तो उन ज्योतिषियों का सर्वदा सम्मान करेंगे और यदि मर जायँगे तो उलाहना देने थोड़े ही आवेंगे ।

(१६)

विष्णोः प्रार्थय मेदिनीं धनपतेर्बीजं बलाल्लाङ्गलं
प्रेतेशान्महिषं तवास्ति वृषभः फालं त्रिशूलं कुरु ।
शक्ताहं तव चान्नपाननयने स्कन्दोऽस्ति गोरक्षणे
भिक्षां संत्यज गर्हितां कुरु कृषिं गौरीवचः पातु वः ॥

महादेवजी के भिखमँगेपन से आजिज़ आकर पार्वतीजी उनसे कहती हैं—भीख माँगना महानीच कर्म्म है। उसीको आपने अपना पेशा बना रक्खा है। छिः छिः! छोड़िए। इस नीच काम का परित्याग कर दीजिए। आपसे यदि और कुछ न बन पड़े तो खेती ही कीजिए। उसके लिए सभी आवश्यक साधन प्राप्त हो सकते हैं। देखिए—विष्णु भगवान् से दो चार बीघे खेत ले लीजिए; कुबेर से बीज ले आइए; बलरामजी से उनका हल माँग लीजिए; अपने त्रिशूल से फाल का काम लीजिए और यम अर्थात् धर्म्मराज से उनका भैंसा प्राप्त कर लीजिए। हाँ अकेले एक भैंसे से काम न चलेगा, यह सच है। पर आपके पास एक बैल जो है । एक भैंसा और एक बैल

इनसे हल जोतने का काम बखूबी हो सकेगा। रहा उनको चराने और चारा पानी देने का काम, सो वह बेटा स्कन्द अच्छी तरह कर लेगा। और मैं खेत पर आपके लिए रोटी-पानी दे आया करूँगी। बस, और क्या चाहिए? इस प्रकार कहने-वाली पार्वतीजी पाठकों को ख़ुश रक्खें।

(१७)

चिताभस्मालेपो गरलमशन दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥

चिताओं की भस्म का तो आप लेप लगाते हैं, कालकूट विष पीते हैं, नङ्ग-धडङ्ग घूमा करते हैं, सिर पर जटायें बढाये हुए हैं, काले नागों के हार कण्ठ में लटकाये रहते हैं, पशुओं और भूतों के स्वामी बने हुए हैं, कपालों की माला धारण किये रहते हैं। कौन, आप जानते हैं? महादेवजी। ऐसा भीषण और ऐसा अमाङ्गलिक तो आपका रूप, आपका साजो-सामान और आपकी वेश-भूषा। फिर भी आपका ऐश्वर्य्य इतना बढा-चढा है कि त्रिलोक के मालिक बने बैठे हैं। पार्वतीजी, बताइए, इसका क्या कारण है? कारण हैं एकमात्र आप। यदि आपका पाणिग्रहण करने का सौभाग्य अशिवरूप शिवजी को न प्राप्त होता तो यह विभव भी उन्हें न प्राप्त होता। फिर तो वे गली गली मारे मारे फिरते। कोई उन्हे कौड़ी को भी न पूछता।

कुछ कुछ इसी भाव का व्यञ्जक एक कवित्त पद्माकर का कहा हुआ भी है। यथा—

लोचन असम अङ्ग भसम चिता को लाइ

तीनों लोक नायक सो कैसे कै छहरतो।

कहै पदुमाकर विलोकि इमि ढंग जाके

वेदहू पुराण गान कैसे अनुसरतो॥

बाँधे जटाजूट बैठि परबनकूट माँहि महा

कालकूट कहौ कैसे कै ठहरतो।

पीवै नित भङ्ग रहै प्रेतन के सङ्ग ऐसे

पूछतो को नङ्ग जो न गङ्ग शीश धरतो॥

(१८)

असारे खलु संसारे सारं श्वसुरमन्दिरम्।

हरो हिमालये शेते विष्णुः शेते महोदधौ॥

इस असार संसार में यदि कोई सार वस्तु है तो वह ससुराल ही है। इसमें सन्देह करने के लिए जगह नहीं, क्योंकि इसके पक्के प्रमाण मौजूद हैं। देखिए, यदि ऐसा न होता तो क्या शिवजी के लिए हिमालय को और विष्णु भगवान् के लिए महासागर को छोड़ कर और कहीं रहने की जगह ही न थी? वहीं क्यों वे सदा सोते हुए पड़े रहते?

(१९)

किसी बूढ़े की उक्ति है—

अपाण्डुराः शिरसिजास्त्रिवली कपोले

दन्तावली विगलिता न हि मे विषादः।

एणीदृशो युवतयः पथि मां विलोक्य

तातेति भाषणपराः खलु वज्रपातः॥

(१०२)

मेरे सिर के बाल सन होगये, झुर्रियाँ पड कर गाल पिचक गये, दाँत गिर जाने से मुँह पोपला होगया। इसकी मुझे ज़रा भी परवा नहीं। परन्तु रास्ते में मुझे जाता देख मृगलोचनी कामिनियाँ जब मुझे "बाबा" कह देती हैं तब मुझे ऐसा कष्ट होता है जैसे मेरे कलेजे में किसी ने सैकडों भाले छेद दिये हों।

(२०)

वासः काञ्चनपिञ्जरे नृपकराम्भोजैस्तनू मार्जनं
भक्ष्यं स्वादु रसालदाडिमफलं पेयं सुधाभं पयः ।
पाठः संसदि रामनाम सततं धीरस्य कीरस्य मे
हा हा हन्त तथापि जन्मविटपिक्रोडं मनो धावति ॥

मेरा निवास तो सुवर्ण के पींजड़े में है। मेरी सेवा करने के लिए स्वयं राजा साहब सदा तैयार रहते हैं, वे मेरे शरीर पर अपने कर-कमल फेरा करते हैं। सुस्वादु अनार और आम के मीठे फल सदा मुझे खाने को मिलते हैं। पीने को अमृततुल्य पानी मिलता है। भरी सभा में भी परम पावन राम-नाम का उच्चारण करने को मिलता है। इतने सुखसाधनों के होते भी मुझ शुक का मन उस पेड के खोखले में फिर पहुँच जाने के लिए सदा दौड़ाही करता है जिसमें मेरा जन्म हुआ था।

(२१)

एतेषु हा प्रलयमारुतधूयमान-
दावानलैः कवलितेषु महीरुहेषु ।
अम्भो न चेज्जलद मुञ्चसि मा विमुञ्च
वज्रं पुनः क्षिपसि निर्दय कस्य हेतोः ॥

एक कवि को किसी राजा से कुछ मिलनेवाला था। इतने में किसी सभासद् महात्मा ने कुछ विघ्न डालना चाहा। इस पर वह कवि, अन्योक्ति-द्वारा, उससे कहता है—प्रलय-काल की प्रचण्ड पवन से प्रदीप्त दावानल से जलते हुए इन तरुवरों पर यदि तू जल की वर्षा नहीं करना चाहता तो न सही—न कर। पर अरे निष्ठुर जलद! तू वज्रपात क्यों करने चला है? पानी तेरे पास नहीं तो अपना वज्र ही समेट रख। उसकी चोट तो न कर।

(२२)

स्मर्तव्योऽहं त्वया मित्र न स्मरिष्याम्यहं तव।

स्मरणं चेतसो धर्म्मस्तच्चेतो भवता हृतम्॥

हे मित्र, कृपापूर्वक अब आप ही मेरा स्मरण किया कीजिएगा। मैं आपका स्मरण न कर सकूँगा। क्योंकि स्मरण अब मेरे सामर्थ्य के बाहर है। बात यह है कि स्मरण करना चित्त का—मन का—धर्म्म है। सो वह मन ही आपने चुरा लिया है। वही मेरे पास नहीं। अतएव मुझसे अब स्मरण होने ही का नहीं। समझ गये आप?

(२३)

दुर्वृत्तसङ्गतिरनर्थपरम्पराया

हेतुः सतां भवति किं वचनीयमेतत्।

लङ्केश्वरो हरति दाशरथेः कलत्रं

प्राप्नोति बन्धमथ दक्षिणसिन्धुराजः॥

दुर्जनों की सङ्गति से सज्जनों को अनेक अनर्थ-परम्परायें झेलनी पड़ती हैं, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। देखिए, सीताजी

को हर तो ले गया रावण, पर बाँधा गया कौन गया, समुद्र! यह दुःसङ्ग ही का फल है। नहीं तो बेचारे समुद्र का क्या कसूर था?

(२४)

एक बड़ी सुन्दर व्याज-निन्दा सुनिए—

साक्षीकृत्य महेश्वरं सगिरिजं स्वर्गापगायास्तटे
प्राणानां शरणं कलेवरधनं न्यासीकृतं सज्जनैः।
भूयो भूरितरैरुपायनिकरैः संप्रार्थ्यमाना तु या
दातुं नेच्छति सा नु किं मुनिवरैर्धन्येति काशीर्य्यते॥

सज्जनों ने अपने प्राणों के आधार शरीररूपी धन को, गङ्गा के किनारे, महादेव और पार्वती इन दोनों को साक्षी करके, काशी के पास धरोहर के तौर पर रख दिया कि सुभीता होने पर फिर उसे वापस ले लेंगे। परन्तु (वह काशी इतनी बेईमान और इतनी बेहया निकली कि) अनेक उपायों को काम में लाने और बार बार माँगने पर भी वह अब उस धन को वापस नहीं देती। हम नहीं जानते, ऐसी (निन्द्य) काशी की प्रशंसा महात्मा लोग फिर क्यों करते हैं? लोक में तो ऐसों की प्रशंसा नहीं, निन्दा और घोर निन्दा ही—होती है।

(२५)

वाणी ममैव सरसा यदि रञ्जयित्री
न प्रार्थये रसविदामवधानदानम्।
सायन्तनीषु मकरन्दवतीषु भृङ्गाः
किं मल्लिकासु परियन्त्रणमारभन्ते॥

यदि मेरी वाणी सरस—मनोरञ्जन करने योग्य—है तो रसिक जनों से यह प्रार्थना करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं कि आप उसे पढ़िए या सुनिए। क्योंकि वे तो आपही उसका आदर करेंगे। भ्रमरों को अपने में आसक्त होने अथवा उनको रोक रखने के लिए, मकरन्द से भरी हुई सायङ्कालीन मल्लिकाओं को क्या कोई उपाय करना पड़ता है? वे तो स्वयं ही दौड़ दौड़ कर उन पर टूटते हैं।

(२६)
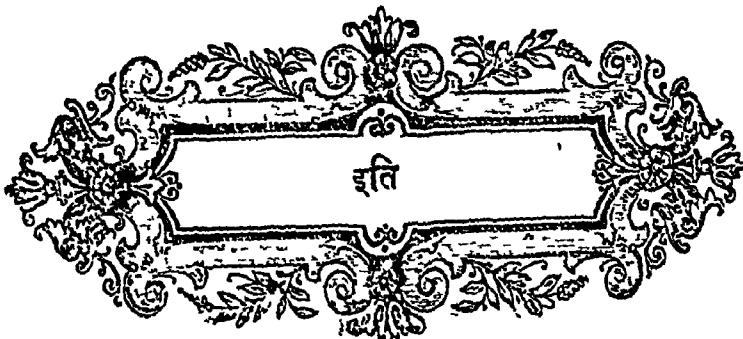
मातर्भारतभूमि! सवसुकृतस्याभूः प्रसूतिः पुरा

त्वन्नामाखिलविश्वविश्रुतमभूद्विद्यायशोभिस्तदा।

यातास्ते दिवसास्तथा सुखमयाः स्मृत्वाऽम्ब! तान् साम्प्रतं

हा! हा! कस्य न मानसं वद महाशोकाम्बुधौ मज्जति॥

हे माँ भारतभूमि! एक समय था जब तू सारे सुकृतों की—सारी प्रशंसनीय बातों की—जननी थी। तेरे विद्या आदि दिव्य गुणों के कारण फैले हुए तेरे यश ने तेरा नाम समग्र संसार में प्रसिद्ध कर दिया था। परन्तु, हाय हाय! अब वे तेरे सुखमय दिन नहीं रहे। इस समय उनका स्मरण होते ही कौन ऐसा मनुष्य है जिसका चित्त महाशोकसागर में न डूब जाता हो?